वार्षिक राजभाषा पत्रिका

सिद्धार्थः सरसों संदेश

अंक 10, वर्ष 2019

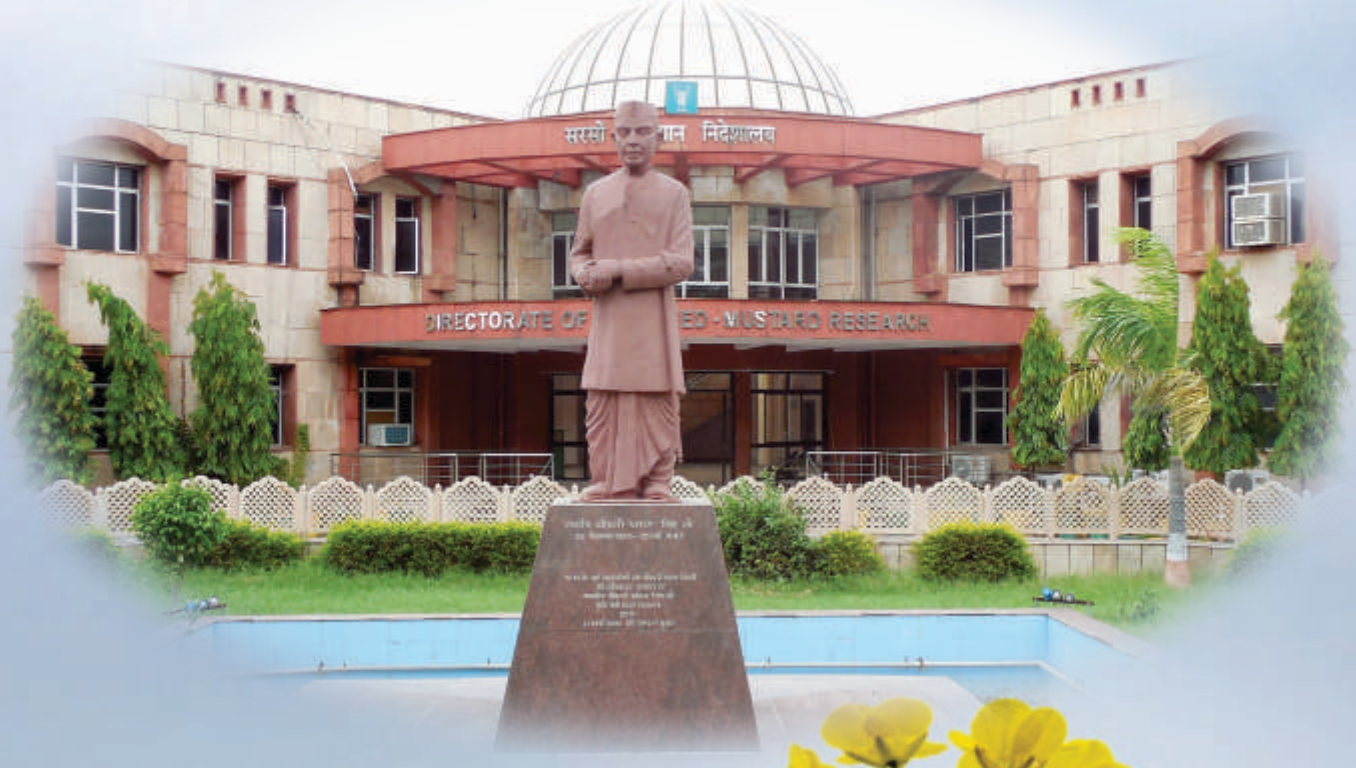

भा.कृ.अनुप. – सरसों अनुसंधान निदेशालय
सेवर, भरतपुर – 321 303 (राजस्थान)
(आई.एस.ओ. 9001 : 2008 प्रमाणित संस्थान)

वार्षिक राजभाषा पत्रिका

सिद्धार्थः सरसों संदेश

अंक 10 वर्ष 2019

प्रधान सम्पादक
प्रमोद कुमार राय

सम्पादक मण्डल
मोहन लाल दौतानियाँ
अशोक कुमार शर्मा
मुरलीधर मीणा
भीरू लाल मीना
प्रशान्त यादव

छाया चित्र
राकेश गोयल

प्रकाशक
निदेशक
भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय
सेवर, भरतपुर–321 303, राजस्थान
दूरभाष : 056644–260379, 2604
फैक्स : 05644–260565
वेबसाइट : www.drmr.res.in
ई–मेल : director.drmr@gmail.com

मुद्रणः प्रीमियर प्रिन्टिंग प्रेस, 12, रामनगर, हवा सड़क जयपुर–302 019, मो. : 9783855551

इस पत्रिका के लेखों में दिये गये विचार लेखकों के हैं। संपादक मण्डल उनके विचारों के लिए किसी भी प्रकार का उत्तरदायी नहीं है। श्रीमान टेकचन्द जी मीना, सवाईमाधोपुर ने पत्रिका को कृषि दोहों से सुशोभित किया है।

सरसों अनुसंधान निदेशालय
Directorate of Rapeseed-Mustard Research
DRMR
1993
CELEBRATING
25
Years
1993 - 2018
ICAR-DIRECTORATE OF RAPESEED-MUSTARD RESEARCH

संपादकीय

सरसों अनुसंधान निदेशालय द्वारा प्रकाशित पत्रिका सिद्धार्थः सरसों संदेश का उद्देश्य है कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी सहायकों को हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन के लिए प्रेरित कर कार्यालय के कार्य हिन्दी में करने के लिए प्रेरित करना है। किसी भी पत्रिका का संपादन मेरूदण्ड होता है इसलिए इस पत्रिका प्रकाशन के लिए हर वर्ष कुछ नये सदस्यों को सम्पादन मण्डल में जोड़ा जाता है ताकि आधिकारियों/कर्मचारियों की सम्पादकीय प्रतिभा का योगदान इस पत्रिका के प्रकाशन में लिया जा सके। इस पत्रिका में कृषि संबधी, विशेषकर राई–सरसों सम्बधित सामान्य वैज्ञानिक लेखों को प्रकाशित किया जाता है। यह पत्रिका किसानों के साथ–साथ प्रसार कार्यकर्ताओं के लिए भी लाभप्रद है। सिद्धार्थः सरसों संदेश का यह दसवें अंक सरसों एवं सामान्य खेती से संबधित वैज्ञानिक एवं सामान्य लेखों से सुसज्जित है। इस पत्रिका के माध्यम से हमारा प्रयास होता है कि कृषि, विशेषकर सरसों अनुसंधान एवं उत्पादन से जुड़े सभी लोग भाषा की शुद्धता की चिंता किए बिना, आम आदमी की समझ में आने वाली सरल हिन्दी भाषा में तकनीकी एवं समान्य लेखन के लिए प्रेरित होगें।

राजभाषा नीति कार्यान्वयन व हिन्दी के प्रोत्साहन हेतु निदेशक (राजभाषा), भा.कृ.अनुप., नई दिल्ली एवं निदेशक, भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर का हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं जिनके प्रेरणात्मक मार्गदर्शन से पत्रिका के दसवें अंक का प्रकाशन सम्पन्न हो सका। हम निदेशालय के समस्त अधिकारियों व कर्मचारियों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। अन्त में उन सभी लेखकों के भी धन्यवादी हैं जिनके लेखों की वजह से इस पत्रिका का प्रकाशन सम्भव हो पाया है। यह हर्ष का विषय है कि विषय–विशेषज्ञों द्वारा लिखित वैज्ञानिक लेखों से कृषकों एवं जन–साधारण में इस पत्रिका की लोकप्रियता बढ़ी है। फिर भी इस पत्रिका में उत्तरोत्तर सुधार के लिए आपके सुझाव और लेख सर्वदा आमंत्रित किये जाते हैं।

संपादक मण्डल

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ सं.
भारत में राई–सरसों अनुसंधान एवं उत्पादन: वर्तमान परिदृश्य हरि सिंह मीना, भीरू लाल मीना, हरिओम कुमार शर्मा	01
ब्रेसिका फेमिली की जंगली प्रजातियों के जनन्द्रव्य: महत्वपूर्ण लक्षणों के मुख्य स्रोत हरिओम कुमार शर्मा, हरि सिंह मीना, प्रियामेधा	05
अरेबिडोप्सिस थेलियाना: ब्रैसिका परिवार का एक आदर्श पौधा हरिओम कुमार शर्मा, पंकज शर्मा, हरि सिंह मीना	11
सरसों उत्पादन की वैज्ञानिक विधि चेतन कुमार दौतानियाँ, रमेश चन्द्र साँवल, राजेश कुमार दौतानियाँ	16
जैव–प्रौद्योगिकी के द्वारा तिलहन फसलों में तना गलन रोग हेतु प्रतिरोधी शक्ति की अभियांत्रिकी नवीन चंद्र गुप्ता, महेश राव, पंकज शर्मा	19
सरसों उत्पादन में जैव प्रौधौगिकी का महत्व प्रशान्त यादव, अनुराग मिश्रा, अरुण कुमार	24
सरसों में समेकित नाशीजीव प्रबंधन अमर चंद, विकास कुमार, वीरेन्द्र कुमार	29
राई–सरसों फसलों में प्रेरित उत्परिवर्तन की महत्वता रितिका, हरि सिंह मीना, प्रभू दयाल मीना	31
खाद्य तेल एवं स्वास्थ्य अनुभूति शर्मा, मेघना गर्ग, अरूण कुमार	34
विभिन्न खाद्य तेलों के तुलनात्मक गुण अनुभूति शर्मा, मेघना गर्ग, अरूण कुमार	36
राई–सरसों फसल में एकीकृत पोषक तत्वों का प्रबंधन मुकेश कुमार मीणा, मोहन लाल दौतानियाँ, हरवीर सिंह	38
कैसे फसलों में उर्वरक उपयोग क्षमता बढ़ायें रमेश चन्द्र साँवल, चेतन कुमार दौतानियाँ, छुट्टन लाल मीणा	43
फसलोत्पादन में जैविक खाद का महत्व प्रशांत यादव, अरुण कुमार, हरि सिंह मीना	46
जैव उर्वरक – प्रकार एवं उपयोग विधि मुकेश कुमार मीणा, मुरलीधर मीणा, भीरू लाल मीना	48
हरी खाद उगायें : अनेक लाभ पायें अशोक कुमार शर्मा, विनोद कुमार	51
प्रदूषित मृदा से भारी धातु निष्कासन : सरसों की भूमिका मोहन लाल दौतानियाँ, मुरलीधर मीणा, मुकेश कुमार मीणा	53
लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का प्रबन्धन रमेश चन्द्र साँवल, चेतन कुमार दौतानियाँ, राजेश कुमार दौतानियाँ	56
जल संरक्षण: चिंतन की आवश्यकता रामस्वरूप जाट, राम लाल चौधरी, हरवीर सिंह	59
कृषि में कृत्रिम बुद्धिमता (एआई) – एक नया आयाम नेहाँजली परमार, कुँवर हरेन्द्र सिंह, अजय कुमार	62

भारत में राई–सरसों अनुसंधान एवं उत्पादनः वर्तमान परिदृश्य

हरि सिंह मीना, भीरू लाल मीना, हरिओम कुमार शर्मा

भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

भारतीय खाद्य तेल सेक्टर के लिए सरसों वर्गीय फसलें एक महत्वपूर्ण घटक है। तिलहनी फसलों में राई–सरसों का प्रमुख स्थान है। भारत में पिछलें पाँच वर्षो के दौरान राई–सरसों वर्ग की प्रमुख सात फसलों का तिलहनों के कुल उत्पादन में लगभग 25 प्रतिशत एवं क्षेत्रफल में लगभग 23.0 प्रतिशत योगदान रहा है। वर्ष 2017–18 के दौरान भारत के प्रमुख छः सरसों उत्पादक राज्योंः राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश, गुजरात तथा पश्चिम बंगाल की हिस्सेदारी सरसों के कुल क्षेत्रफल व उत्पादन में क्रमशः 84 प्रतिशत एवं 91 प्रतिशत रही है। आसाम, बिहार, पंजाब व देश के कुछ अन्य राज्यों में भी सीमित क्षेत्रफल पर इन फसलों की खेती की जाती हैं। इस अवधि में उत्पादकता का न्यूनतम स्तर 168 किग्रा/हैक्टर कर्नाटक से लेकर अधिकतम 2018 किग्रा/हैक्टर हरियाणा राज्यों के बीच तथा कुल राष्ट्रीय औसत उत्पादकता 1410 किग्रा/ हैक्टर रही है। राई–सरसों फसलों का करीब 25 प्रतिशत क्षेत्र असिंचित व वर्षा पर आधारित है जिसके कारण ऐसे क्षेत्रों की औसत उपज सिंचित क्षेत्रों के मुकावले सीमित होती है।

सरसों अनुसंधान की प्रगति

भारत में राई–सरसों फसलों की उन्नतशील किस्मों व संकर प्रजातियों का विकास, रोग व कीट प्रतिरोधिता, तेल की गुणवत्ता तथा अन्य शष्य गुणों हेतु व्यवस्थित पहचान इत्यादि के क्षेत्र में व्यापक अनुसंधान कार्य किया जा रहा हैं। अभी तक भारत में राई–सरसों फसलों की कुल मिलाकर 236 उन्नत किस्में विकसित की गई हैं, जिनमें से 184 किस्मों को अधिसूचित किया गया हैं (सारणी 1)। वर्ष 2018–19 के दौरान इनमें से 61 किस्में प्रजनक बीज उत्पादन के लिए चिन्हित की गयी जिनके 84.76 कुन्टल प्रजनक बीज की मांग के सापेक्ष 256.32 कुन्टल प्रजनक बीज उत्पादन किया गया। इसके अलावा 17 किस्मों के 77.58 कुन्टल प्रजनक बीज का अतिरिक्त उत्पादन किया गया। भारतीय सरसों की आठ कम इरूसिक अम्ल वाली किस्मेंः पूसा मस्टर्ड 29, पूसा मस्टर्ड 30, पूसा करिश्मा, पूसा मस्टर्ड 21, पूसा मस्टर्ड 22, पूसा मस्टर्ड 24, आर.एल.सी 1 एवं आर. एल.सी 2 व एक किस्म पूसा मस्टर्ड 31 'डबल जीरों' तथा गोभी सरसों की पाँच 'डबल जीरों' (कम इरूसिक अम्ल व कम ग्लूकोसिनोलेट) वाली किस्मेंः जी. एस. सी 5, हयोला 401, टेरी उत्तम जवाहर, जी.एस.सी 6 व एन.यू.डी.बी 26–11 विकसित की गयी हैं। साथ ही विभिन्न परिस्थितियों के लिए अनेक उन्नतशील प्रजातियों का विकास किया है (सारणी 2)। सरसों की फसल लेने हेतु अलग–अगल राज्यों के लिये उचित फसल चक्र तथा अन्तराशष्य मिश्रण पहचान किये गये हैं। एकीकृत पोषण प्रबन्धन के तहत उर्वरक उपयोग क्षमता को बढ़ाया गया है। विभिन्न रोगों एवं कीटों से होने वाली हानि का अनुमान लगाया गया है। रोगों में काला धब्बा, सफेद रोली, श्वेत गलन तथा चूर्णित असिता तथा कीटों में माहूँ, चितकबरा कीट तथा आरा मक्खी के समेकित प्रबन्धन विधियों को विकसित किया गया है। राष्ट्रीय स्तर पर अग्रिम पंक्ति प्रर्दशनों में किसानों की प्रचलित तकनीकों के बजाय वैज्ञानिकों द्वारा विकसित तकनीकियों को बहतर पाया गया है। पिछलें कुछ दशकों के दौरान राई–सरसों फसलों के लिए वैज्ञानिकों द्वारा विकसित की गई उन्नत तकनिकों के किसानों द्वारा अपनाए जाने से प्रति इकाई औसत उपज में उत्रोत्तर बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी है। देश में राई–सरसों फसलों की औसत उपज वर्ष 1950–51 में 368 कि.ग्रा प्रति हैक्टर के मुकाबले वर्ष 2017–18 में 1410 कि.ग्रा प्रति हैक्टर तक पहुच गई है।

परन्तु विश्व की कुल औसत उपज 1974 कि.ग्रा प्रति हैक्टर के मुकाबले हमारे देश में प्रति इकाई औसत उपज अभी भी कम है। अतः बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं को देखते हुए हमारे देश में अभी इन फसलों के उत्पादन को और अधिक तेजी से बढ़ाने की आवश्यकता है। राई–सरसों फसलोंत्पादन में विभिन्न प्रकार के कीट व व्याधियों, औरोबेन्की व अन्य खरपतबारों द्वारा करीबन 45 प्रतिशत उपज का नुकसान होता है। अतः फसल उत्पादन प्रक्रिया के दौरान होने वाली इस हानि के बचाव हेतु बेहतर तकनिकीयों को अपनाकर देश में तिलहन उत्पादन को काफी हद तक बढ़ाया जा सकता हैं।

सारणीः 1 राई–सरसों की अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना से पूर्व एवं बाद में विकसित एवं अधिसूचित कुल किस्में।

फसल	चिन्हित किस्में / विकसित किस्में					
	परियोजना से पूर्व (1936–1966)		परियोजना के बाद (1967–2019)		कुल	
	विकसित	अधिसूचित	विकसित	अधिसूचित	विकसित	अधिसूचित
रेपसीड						
भूरी सरसों	4	1	8	8	12	9
गोभी सरसों			15	13	15	13
तारामीरा	1	1	9	8	10	8
तोरिया	9	4	28	24	37	28
पीली सरसों	6	4	17	11	23	15
मस्टर्ड						
काली सरसों			1	1	1	1
भारतीय सरसों	6	2	125	104	131	106
करन राई			7	4	7	4
कुल	26	12	210	173	236	184

स्रोतः कॉम्पेंडियम ऑफ रेपसीड़–मस्टर्ड वैराइटीज (2012), सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर, www.seednet.gov.in

विभिन्न राज्यों में सरसों की खेती

देश के उत्तरी तथा पूर्वी मैदानों के 26 राज्यों में लगभग 5.97 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में वर्ष 2017–18 के दौरान राई–सरसों की खेती की गयी। इन ऑकड़ो के अनुसार देश के कुल कृषित क्षेत्रफल (142 मिलियन हैक्टर) के करीब 22.0 प्रतिशत क्षेत्र (31.30 मि. है.) पर तिलहनी फसलें ली जा रही है तथा केवल 3 से 4 प्रतिशत क्षेत्रफल में राई–सरसों समूह की फसलों का उत्पादन होता हैं। वर्ष 2018–19 के दौरान भारत में राई–सरसों का कुल उत्पादन 9.34 मिलियन टन लिया गया। शुष्क क्षेत्रों में सीमान्त एवं लघु कृषकों की आय का मुख्य स्त्रोत राई–सरसों फसलें हैं क्योंकि इन्हें अन्य फसलों के मुकाबलें बहुत कम जल (80–240 मिली) की आवश्यकता होती है तथा असिंचित कृषि के लिए ये उपयुक्त फसलें भी होती हैं। उत्पादन में योगदान के हिसाब से तिलहनी फसलों में सोयाबीन के बाद राई–सरसों दूसरें स्थान पर आती हैं। सरसों मुख्यतयाः राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश तथा गुजरात में उगायी जाती है। दक्षिणी राज्यः कर्नाटक, तमिलनाडू, आन्ध प्रदेश व उत्तर पूर्वी राज्यों के अपरम्परागत क्षेत्रों तक इसकी खेतीं के प्रसार पर जोर दिया जा रहा है। भूरी सरसों की खेतीं जो कि कभी राई–सरसों में प्रमुखताः से उगायी जाती थी का स्थान सरसों अथवा लाहा ने ले लिया है। पीली सरसों मुख्यतया असम, बिहार, उत्तरी पूर्वी राज्यों, उड़ीसा, पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में उगायी जाती है। तोरिया एक अल्पावधि की फसल है जोकि शरद ऋतु में मुख्यतया आसाम, बिहार, उडीसा तथा पश्चिम बंगाल में उगायी जाती है। तारामीरा उत्तर पश्चिम भारत के शुष्क भागों वाले राज्यों राजस्थान, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में उगाया जाता हैं। गोभी सरसों व करन राई कुछ सीमित क्षेत्रों में नयी तिलहनी फसल के रूप में उभर रही हैं। गोभी सरसों दीर्घावधि की फसल है एवं अभी ये हरियाणा, हिमाचल प्रदेश तथा पंजाब तक सीमित है।

सारणी: 2 भारत में राई–सरसों की विभिन्न परिस्थितियों के लिए विकसित प्रमुख किस्में।

परिस्थिति / लक्षण	किस्में
भारतीय सरसों	
सिंचित व समय से बुबाई	गिरिराज, आर.एच 749, एन.आर.सी.डी.आर 2, पूसा जयकिसान, आर.जी.एन 73, क्रांति, पूसा बोल्ड, आर.एच 30,रोहिणी, वरूणा
सफेद रोली अबरोधी	बसंती, जे.एम 1, जे.एम 2
शीघ्र पकने वाली	क्रांति, नरेन्द्र अगेती राई 4, पूसा अग्रणी, पूसा महक, पूसा विजय, पूसा मस्टर्ड 25, पूसा मस्टर्ड 27, पूसा मस्टर्ड 28, पूसा तारक
अधिक तेल युक्त	नरेन्द्र स्वर्णा राई 8, एन.आर.सी.डी.आर 2, रोहिणी
अधिक तापमान सहने योग्य	क्रांति, पूसा अग्रणी, आर.जी.एन 13, उर्वशी, एन.आर.सी.डी.आर 2, पूसा मस्टर्ड 25, पूसा मस्टर्ड 27, आर.एच 119
अन्तःफसल हेतु उपयुक्त	आर.एच 30, वरदान
देरी से बुबाई हेतु	आशीर्वाद, आर.एल.एम 619, स्वर्णज्योति, वरदान, नवगोल्ड, आर.जी.एन 145, एन.आर.सी.एच.बी 101, सी.एस 56, पूसा मस्टर्ड 26
अपरम्परागत क्षेत्रों के लिए	पूसा अग्रणी, पूसा जयकिसान, रजत, जी.एम 2, टी.पी.एम 1, शताब्दी
असिंचित क्षेत्रों के लिए	अरावली, गीता, पी.बी.आर 97, पूसा बहार, पूसा बोल्ड, आर.एच 819, आर.जी.एन 48, शिवानी, टी.एम 2, टी.एम 4, आर.बी 50, आर.एच 119, आर.एच 725, आर.एच 461, डी.आर.एम.आर 150–35, डी.आर. एम.आर 1165–40, आर.जी.एन 298, एस.के.एम 518
ऊसर भूमि हेतु	सी.एस 52, सी.एस 54, सी.एस 58, सी.एस 60,नरेन्द्र राई (एन.डी.आर 8501)
पाला सहनशील	आर.जी.एन 13, आर.एच 819, स्वर्णज्योति, आर.जी.एन 48
तेल की गुणबत्ता (कम इरूसिक अम्ल व डवल जीरो)	पूसा मस्टर्ड 29, पूसा मस्टर्ड 30, पूसा मस्टर्ड 31 (डवल जीरो किस्म),पूसा करिश्मा, पूसा मस्टर्ड 21, पूसा मस्टर्ड 22, पूसा मस्टर्ड 24, आर.एल.सी 1 एवं आर.एल.सी 2
संकर किस्में	एन.आर.सी.एच.बी 506, डी.एम.एच 1, कोरल 432, कोरल 432,
गोभी सरसों	
तेल की गुणबत्ता (कम इरूसिक अम्ल व कम ग्लुकोसिनोलेट)	जी. एस. सी 5, टेरी उत्तम जवाहर, जी.एस.सी 6 व एन.यू.डी.बी 26–11, हयोला 401

स्रोतः कॉम्पेंडियम ऑफ रेपसीड–मस्टर्ड वैराइटीज (2012), सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर; वार्षिक प्रतिवेदन (2012–2019), अखिल भारतीय समन्वित राई–सरसों अनुसंधान परियोजना

अखिल भारतीय समन्वित राई–सरसों अनुसंधान परियोजना

भारतीय वानस्पितिक तेल अर्थव्यवस्था संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, चीन व ब्राजील के बाद विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। विश्व राई–सरसों अर्थव्यवस्था में भारत का प्रमुख स्थान है। विश्व के कुल राई–सरसों क्षेत्रफल व उत्पादन में भारत का तीसरा स्थान है। वर्ष 2017–18 में विश्व के कुल राई–सरसों क्षेत्रफल में 17.19 प्रतिशत व उत्पादन में 8.54 प्रतिशत योगदान रहा है। तिलहन अनुसंधान के क्षेत्र में फोकस्ड मल्टी–डिस्सीप्लेनरी रिसर्च, उन्नतशील किस्मों व

संकर प्रजातियों का विकास, बहुआयामी तकनीकों का विकास तथा मॉडल कार्यक्रमों की सिफारिश द्वारा रिकॉर्ड तिलहन उत्पादन इत्यादि के फलस्वरुप ही यह सब संभव हो सका है। वर्तमान में राई–सरसों प्रजाति विकास कार्यक्रम अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना के अन्तर्गत विभिन्न शष्य जलवायु क्षेत्रों में स्थापित केन्द्रों पर किया जा रहा है। केन्द्रीय प्रजाति अनुमोदन समिति द्वारा अखिल भारतीय राई–सरसों समन्वित अनुसंधान परियोजना की स्थापना वर्ष 1981 के उपरान्त वर्ष 2018 तक 236 प्रजातियां का रिलिज हुई जिनमें 131 प्रजातियां सरसों की, 17 तोरिया, 23 पीली सरसों, 15 गोभी सरसों, 12 भूरी सरसों, 7 करन राई, 10 तारामीरा की एवं काली सरसों की एक प्रजाति सम्मिलित है। प्रजाति विकास से संबन्धित उद्वेश्यों मेः – सरसों फसलों में तेल प्रतिशत तथा बीज की पैदावार बढ़ाना, संकर किस्मों का विकास, उत्पादन में स्थिरता हेतु जैविक कारकों जैसें सफेद रोली, अजैविक कारकों जैसे सूखा, लवणीयता प्रतिरोधी किस्में तैयार करना, तेल (कम इरूसिक अम्ल) तथा खली (कम ग्लूकोसिनोलेट) की गुणवत्ता बढ़ाना एवं दक्षिण भारत में अपरम्परागत क्षेत्रों के लिए उपयुक्त किस्मों का विकास करना इत्यादि प्रमुख उद्वेश्य है।

पिछले 51 वर्षो के अथक प्रयत्नों से अखिल भारतीय समन्वित तिलहन अनुसंधान परियोजना की शुरूआत 1967 के पश्चात विभिन्न फसल प्रणाली एवं परिस्थितियों के लिए अब तक राई– सरसों की 210 उन्नत किस्मों की पहचान की गयी तथा उनमें से 172 किस्में अधिसूचित हुई है। सन् 1936 से 2018 तक कुल 236 किस्मों का विकास हुआ है एवं 184 किस्मों को अधिसूचित किया जा चुका है (सारणी 1)। देश के विभिन्न राज्यों व भिन्न–भिन्न परिस्थितियों के लिए अनेक किस्मों को विकसित किया गया है (सारणी 2)। सरकारी अनुसंधान संस्थाओं और कृषि विश्वविधालयों के अलावा हयोला 401, रागिनी, शिवालिक, टेरी उन्नत, टेरी उत्तम जवाहर, डी.एम. एच 1, कोरल 432, कोरल 432 इत्यादि को गैर सरकारी संगठनों अथवा प्राईवेट कम्पनीयों द्वारा विकसित किया गया हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के तत्वाधान में सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राजस्थान) एक केन्द्रिय संस्थान के रुप में कार्यरत है जहॉ सरसों फसलों से संबन्धित मल्टी–डिस्सीप्लेनरी रिसर्च आधारित व्यापक अनुसंधान कार्य जारी है।

तिलहन व खाद्य तेल की आपूर्ति एवं आवश्यकता

सतत् जनसंख्या वृद्धि, रहन–सहन व खानपान के ढ़ंग में होते हुए बदलावों तथा जीवन स्तर में सुधार को देखते हुए वर्ष 2030 तक वार्षिक खाद्य तेलों की खपत बर्तमान 13.4 कि.ग्रा. प्रति व्यक्ति/वर्ष से बढ़कर अनुमानित 23.1 कि.ग्रा. प्रति व्यक्ति/वर्ष हो जाएगी एवं इसकी पूर्ति हेतु लगभग 102. 3 मिलियन टन तिलहनों की जरुरत होगी। देश में तिलहनों के कुल उत्पादन में राई–सरसों की बर्तमान हिस्सेदारी 8.43 मिलियन टन के हिसाब से वर्ष 2030 में लगभग 16.4–20.5 मिलियन टन उत्पादन की आवश्यकता होगी। पिछलें कुछ बर्षो के दौरान देश में घरेलू खाद्य तेल उत्पादन लगभग स्थिर रहा है। वर्ष 2009–10 में यह 79.45 लाख टन था जोकि वर्ष 2015–16 में 86.37 लाख टन रहा है। जिसमें लगभग 20.9 से 24.98 प्रतिशत हिस्सेदारी राई–सरसों फसलों की रही हैं। हॉलाकि इस दौरान खाद्य तेलों की खपत 12.6 मिलियन टन से बढ़कर 23.45 मिलियन टन हो गयी है। खाद्य तेलों की मॉग व पूर्ति के बीच इस अन्तराल को भरने के लिए हमें खाद्य तेलों के आयात पर निर्भर होना पड़ रहा है। वर्ष 2009–10 में इनका आयात 8.82 मिलियन टन था जोकि बढ़कर वर्ष 2016–17 में 14.82 मिलियन टन हो गया है। देश में खाद्य तेलों की वर्तमान आत्मनिर्भता लगभग 50 प्रतिशत है जबकि जनसंख्या में तीव्र गती से वृद्धि हो रहीं है। भारत की जनसंख्या वर्ष 2011 में 121 करोड़ के मुकाबलें बढ़कर वर्ष 2030 तक लगभग 148 करोड़ तक पहुॅच जाएगी। क्रय शक्ति में बढ़ोतरी व जीवन स्तर में होते सुधारों के फलस्वरुप प्रति व्यक्ति वार्षिक खाद्य तेलों की खपत में हो रही वृद्धि के मद्देनजर उपरोक्त अवधि के दौरान खाद्य तेलों की मॉग में वार्षिक वृद्धि दर लगभग 3.54 प्रतिशत रहने का अनुमान है। इसलिए वर्ष 2030 तक देश में खाद्य तेलों की आत्मनिर्भता के लिए लगभग 34.1 मिलियन टन खाद्य तेलों की आवश्यकता होगी। स्थाई एवं टिकाऊ तिलहन उत्तपादन लेने के लिए फसल उत्पादन को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों (जैविक व अजैविक) के साथ–साथ नवीनत्म उन्नत किस्मों व हाइब्रिड् का गुणवत्तायुक्त बीज उत्पादन एवं आधुनिक उन्नत तकनीकियों का किसानों तक प्रसार जैसी महत्बपूर्ण बातों पर अधिकाधिक ध्यान देने की जरुरत है। साथ ही उत्तरोत्तर बढ़ती हुई समस्याओं व आवश्यकताओं को ध्यान रखते हुए देश में तिलहनी फसलों के उत्पादन को तेजी से बढ़ाने की आवश्यकता है।

❑❑❑

ब्रेसिका फेमिली की जंगली प्रजातियों के जनन्द्रव्यः महत्वपूर्ण लक्षणों के मुख्य स्रोत

हरिओम कुमार शर्मा, हरि सिंह मीना, प्रियामेधा

भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

पौधों की प्रजातियों की विविधता ने मानव सभ्यता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मानव विभिन्न पौधों की प्रजातियों पर निर्भर करता है। पौधों की प्रजातियों की विभिन्नता और विविधता हमारे पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। ब्रैसिका प्रजाति ब्रैसिकेसी परिवार से संबंधित है जिसमें विभिन्न प्रकार के पौधे शामिल हैं, जो दुनिया भर में सब्जियॉ, चारा, तेल और मसालों के लिए उगाए जाते हैं। प्राचीन काल से इनका उल्लेख किया गया है और संभवतः 5000 ईसा पूर्व के पहले से ही इसकी खेती होती थी। पाइथागोरस द्वारा सरसों का प्रारंभिक उल्लेख 530 ईसा पूर्व में यूनानियों, रोमन, और 5000 से 200 ईसा पूर्व के चीनी लेखन द्वारा बिच्छू के काटने के उपाय के रूप में किया गया है। इसके तेल का उपयोग एशिया में पहले दीपक तेल के रूप में किया जाता था बाद में इसका उपयोग खाना पकाने के तेल के रूप में किया जाने लगा। रोमन लोग मस्ट को कुचले हुए सरसों के बीज के साथ मिलाकर एक पेस्ट बनाते थे जिसे 'मस्टर्ड आर्देस' के रूप में जाना जाता था। अंग्रेजी शब्द सरसों लैटिन शब्द 'मस्टम' या 'मस्ट' से लिया गया है, जिसका अर्थ 'अंगूर का रस' होता है एवं 'अर्देस' का अर्थ 'गर्म' या 'जलना' होता है। शब्द "रेपसीड" संभवतः "रैपा" से आया है जिसका अर्थ शलजम होता है।

ब्रैसिकेसी आर्थिक रूप से सबसे अधिक महत्वपूर्ण दस परिवारों में से एक है जिसमें लगभग 3500 प्रजातियां और 350 जेनेरा शामिल हैं। इस परिवार की तीन मुख्य विशेषताएं है, (i) पुंकेसर का टेट्राडायनामस विन्यास (चार लंबे और दो छोटे पुंकेसर) होता है, (ii) फूल की चार पंखुड़ियां होती हैं, जो एक क्रॉस का निर्माण करती हैं, इसलिए परिवार का नाम क्रुसीफेरा भी होता है, (iii) फली में एक पतली पारभासी फ्रेम जैसी आंतरिक झिल्ली (रेप्लम) होती है जो फली के दोनों किनारों को अलग करती है और फली जिससे बीज जुड़े होते हैं उसे सिलिकुआ कहा जाता है। सिलिकुआ सामान्य रूप से जेनरा एवं प्रजातियों की उचित पहचान के लिए इस्तेमाल की जाने वाली संरचनाएं हैं। जीनस *ब्रैसिका ट्राइब ब्रैसिसीनी* के दस मूल जनेरा में से एक है, जिसमें *कॉइनसिया, डिप्लोटैक्सिक्स, एरुका, इरुकेस्ट्रम, हिर्शफेल्डिया, रेफानस, सिनैपिडेंड्रोन, सिनापिस* और *ट्रेकिस्टोमा* शामिल हैं। *ब्रैसीसिनी* को मुख्य रूप से लम्बी (सिलीकोज़) फलीदार फल, मध्ययुगीन नेक्ट्रिन और आमतौर पर बीजयुक्त चोंच की उपस्थिति के आधार पर परिभाषित किया गया है। ट्राइब *ब्रैसिसिनी* में 49 जेनेरा में लगभग 235 प्रजातियां हैं। द्विगुणित प्रजातियों में जीनोमिक संख्या (x =7) या (x=12) तक होती है। ब्रेसिकेसी की प्रमुख प्रजातियों के साधारण नाम एवं गुणसूत्र संख्या नीचे सारिणी 1में उल्लेखित है। ब्रैसिका की जंगली प्रजातियाँ तथा सम्बन्धी प्राकृतिक रूप से भूमध्यसागरीय क्षेत्र (मुख्य रूप से मोरक्को, स्पेन, अल्जीरिया) में पाए जाते हैं। इन प्रजातियों की भूमध्य रेखा से लेकर भारत तक व्यापक वितरण सीमा है। हारबर्ड (1976) ने ब्रैसिका के इन जंगली रिश्तेदारों के जर्मप्लाज्म को वर्गीकृत किया और उन्हें ब्रैसिका सीनोस्पेकीज़ के रूप में संदर्भित किया। ब्रासिकेसी परिवार में जंगली रिश्तेदार अधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये कई संभावित और साइटोप्लाज्मिकमिक जीनों का भंडार हैं (सारिणी 2)।

सारिणी 1: ब्रेसिका और संबंधित प्रजातियों के सामान्य नाम और गुणसूत्र की संख्या।

वैज्ञानिक नाम	सामान्य नाम	गुणसूत्र संख्या	जीनोम आकार (mb / 1c)
अरेबिडोप्सिस थेलीआना	थेले क्रेस, माउस–ईयर क्रेस	2n=10	125
ब्रेसिका जुन्सिया	भारतीय सरसों	2n=36 (AABB)	534
ब्रेसिका नेपस	राई, कनोला, गोभी सरसों	2n = 38 (AACC)	566
ब्रेसिका केरिनाटा	करन राई, इथोपियन सरसों	2n = 34 (BBCC)	642
ब्रेसिका नाइग्रा	काली सरसों	2n = 16 (BB)	632
ब्रेसिका ओलेरेसिया	गोभी	2n = 18 (CC)	696

ब्रेसिका रापा	बर्ड रेप	2n = 20 (AA)	529
ब्रेसिका टोर्नेफोर्टी	एशियाई सरसों, अफ्रीकी सरसों, सहारा सरसों	2n = 20 (TT)	791
ब्रेसिका इलोंगाटा	लम्बी सरसों, लम्बी डंठल वाली रेप	2n = 22	.
ब्रेसिका फ्रूटिकुलोसा	भूमध्य गोभी या टहनी शलजम	2n = 16	.
कैमेलिना सटाईवा	सुख का स्वर्ण, झूठा फ्लेक्स	-	
कैप्सैला बर्सा-पास्टोरिस	चरवाहे का बटुआ	2n = 16, 32	203
क्रैम्बे एबिसिनिका	एबिसिनियन काले, एबिसिनियन गोभी	2n=90	.
डिप्लोटैक्सिस इरुकहइड	सफ़ेद वाल–रॉकेट	2n = 14	632
डिप्लोटैक्सिस मुरालिस	रेत–रॉकेट	2n = 42	.
डिप्लोटैक्सिस टेनुफ़ोलिया	वाल–रॉकेट	2n = 22	.
एरुका वेसिकेरिया सबस्प. सटाईवा	गार्डन रॉकेट	2n = 22	560
एरुकेस्ट्रम गेलिकम	डॉग सरसों	2n = 30	.
लेपिडियम सटाईवम	गार्डन क्रेस, मस्टर्ड क्रेस	-	380
अहरिकोफ्राग्मस वायलेसिअस	चीनी वायलेट क्रेस	2n = 24	.
रेफेनस रेफेनिसट्रम	जंगली मूली, संयुक्त चारलोक	2n = 18	.
रेफेनस सटाईवस	मूली	2n = 18	402
सिनापिस अल्बा	सफेद सरसों	2n=24 (SS)	553
सिनापिस अर्वेन्सिस	जंगली सरसों	2n = 18	367
थासपी अर्वेंस	फील्ड पेनि क्रेस, फ्रेंच वीड, स्टिंकवीड	2n = 14	539

सारिणी 2: ब्रैसिका और उनके जंगली रिश्तेदारों के विभिन्न कृषि संबंधी लक्षणों की सूची।

कृषि संबंधी लक्षण	**प्रजातियां**
सिलिकुआ झड़ने की प्रतिरोधी	*बी. जुन्सिया, बी. मैक्रोकार्पा, बी. हिलारियोनिस, बी. टोर्नेफोर्टी, एनरथ्रोकार्पस स्पीशीज, हिर्शफेल्डिया इंकाना, रेफेनस स्पीशीज*
जैव रासायनिक लक्षण	
अधिक इरुसिक अम्ल (45–50 प्रतिशत)	*बी. क्रेटिका, बी. इन्काना, बी. रुपेस्ट्रिस, बी. विलोसा, क्रैम्बे एबिसिनिका, सी. हर्पेनिका, एरुका वेसिकरिया (ई. सटाईवा), एरुकास्ट्रम कार्डेमिनोइड्स, सिनापिडेंड्रोन एंगुस्टिफोलिया, सिनैपीस अल्बा, एस. आरवेंसिस*
अधिक लिनोलिक और/अथवा लिनोलेनिक अम्ल	*एलिस्सुम स्पीशीज, बर्बेरिया स्पीशीज, बी. इलोंगेट, कैमेलिना सटाईवा, कार्डामाइन स्पीशीज, कोरिन्निया स्पीशीज, डेस्कुरैनिया सोफिया, डिप्लोटैक्सिस हर्रा, लेपिडियम सटाईवम, लेपिडियम स्पिनोसुम, मैथियोला इनकाना, मैथियोला लिविडा, नास्टुर्तिओप्सिस अरेबिका, ओरीकोफैग्मस वायोलासिअस*
हाइड्रोक्सी वसा अम्ल की अधिक मात्रा	*लेसकुरेल्ला एवं फाईसेरिया स्पीशीज*
स्टेरोल्स	*कैमेलिना सटाईवा (उच्च कोलेस्ट्रॉल और ब्रैसीकोस्टेरोल), क्रैम्बे एबिसिनिका, लेस्केरेला स्पीशीज*

माध्यमिक मेटाबोलाइट्स	*एरीसिमम चीरी (कार्डेनोलाइड्स), लेस्केरेला फेंन्डलेरी (सिनमॉयल एस्टर-सनस्क्रीन), लूनारिया एनुआ (एल्कलॉइड्स)*
पुष्प वर्णक	*चीयरैंथस चीरी (एसाइलेटेड साइनाइडिन ग्लूकोसाइड), लोब्युलरिया मैरिटिमा (एसाइलेटेड साइनाइडिन ग्लूकोसाइड), लूनारिया एनुआ (एसाइलेटेड साइनाइडिन ग्लूकोसाइड)*
कीट विरोधी / एलेलोपैथी	*एलियारिया पेटियोलाटा, आर्मोरेसिया रस्टिकाना, ब्रैसिका निग्रा, क्रैम्बे एबिसिनिका, डेस्कुरैनिया सोफिया, डिप्लोटैक्सिस इरुकोयॉइड्स (एंटी-माइक्रोबियल कंपाउंड्स), लेपिडियम परफोलिटम, नास्टर्टियम ऑफिसिनेल (एंटी-निमेटोड), सिनैपिस अर्वेंसिस, ज़िला अर्वेंसिस (एंटी-वीड और -रिज़ोस्फीयर कवक)*
फ्लेवोनोइड्स	*ब्रैसिका स्पीशीज, केमेलीना सटाईवा, क्रैम्बे स्पीशीज, डिप्लोटैक्सिस एक्रिस, डिप्लोटैक्सिस हर्रा, इरुकास्ट्रम स्पीशीज, थापसी अर्वेंस*
टोकोफेरोल्स (विटामिन ई)	*रेंज (मिलीग्राम/किग्रा.) तेलः डिप्लोटैक्सिस विमिनिया (68), शिवरेकिया डोरफ्लेरी (2479)*
परोक्सीडेज	*आर्मोरेसिया रस्टिकाना*
म्युसिलेज	*कैमेलिना सटाईवा, लेपिडियम सटाईवम, सिनैपिस अल्बा*
प्रकाश संश्लेषण	
प्रकाश संश्लेषण (सी 4–सी 4 इंटरमीडिएट)	*मोरिकेंडिया अर्वेन्सिस, एम. नाइटेंस, एम. सिनिका, एम. स्पिनोसा, डिप्लोटैक्सिस टेन्यूफोलिया*
प्रकाश संश्लेषण दर	*ब्रेसिका ओक्सिराईना, बी. एम्प्लेक्सिकालिस, डिप्लोटैक्सिस केथोलिका, डी. विम्निया, एनार्थ्रोकार्पस लाईराटस, एरुकास्ट्रम लेविगेटम, मोरिकेंडिया अर्वेन्सिस, सिनैपिस अर्वेन्सिस, ओरीकोफैग्मस वायोलासिअस*
साइटोप्लाज्मिक पुरुष बाँझपन	*ब्रेसिका जुन्सिया, ब्रेसिका नेपस (नैप एंड पोल), ब्रैसिका ओलेरासिया Ms-cd1 ब्रैसिका ऑक्सीरिना (ऑक्सीरिहिना), ब्रैसिका रापा, पीली सरसों (वाईएसएमएस -६), ब्रैसिका टोर्नेफोर्टी (टोर्नेफोर्टी), डिप्लोटैक्सिस बरथोटी, डी. कैथोलिका, डी. इरूकोइड्स, डी. हर्रा, डी. मुरालिस, डी. सिफोलिया (सिफोलिया), एनरथ्रोकार्पस लिरैटस, एरुका वेसेकेरिया उप-समूह सटाइवा, एरुकेस्ट्रम कैनरीएंस, लेस्केरेला फेंडलेरी, मोरिकेंडिया अर्वेन्सिस (मोरिकेंडिया), रेफेनस सटाईवस (ओगुरा), सिनापिस इनकाना, ट्रेकिस्टोमा बॉली (ट्रेकिस्टोमा)*
मृदा एवं जलीय अनुकूलन	
लवण सहनशीलता	*क्रैम्बे मेरिटाइम,एरुका वेसिकेरिया उपजाति सटाईवा, लेस्केरेला फेंडलेरी, लोबुलेरिया मेरिटाइम, रेफेनस रेफेनिसट्रम*
कैल्सियम युक्त (चूना पत्थर) मिट्टी के प्रति सहिष्णुता	*वेला बौरजेनम, मोरिकेंडिया मोरिकेंडियोइड्स*
भारी धातु (Ar, Cd, Ni, Pb, Se, Sr, Zn) सहिष्णुता और अधिक संचय	*लेपिडियम सटाईवम, स्ट्रेप्टेंथस स्पीशीज, थापसी मोंटानम, थापसी कैरोल्सकेंस*
ठण्ड के प्रति सहिष्णुता	
पहाड़ी आवास (उन्नयन > 2000–2500 मीटर एवं बर्फ की रेखा के ऊपर)	*ब्रेसिका निवालिस (माउंट ओलंपस, ग्रीस), ब्रैसिका जोर्डनॉफ़ि (माउंट पिरिन प्लिना, बुल्गारिया), कॉइनासायेरा रिचरी (फ्रांसीसी और इतालवी आल्प्स - 1750-2500 मी), इरुकास्ट्रम एबिसिनिकम और ई. पचीपोडम, इथियोपियाई हाइलैंड्स (3000 मी); परिवार में कई जेनरा, अरेबिस, क्रूसिहिमालय, द्राबा (हिमालय, आल्प्स, रॉकीज, एंडीज में 6000 मीटर तक के अल्पाइन क्षेत्रों के लिए अनुकूलित), रोमनस्कूलज़िया (मेक्सिको और मध्य अमेरिका) और ओरोफाइटन (पूर्वी अफ्रीका) उष्णकटिबंधीय के ऊंचे पहाड़ों के लिए अनुकूलित*
सर्दी के प्रति सहिष्णु जीन	*बर्बरीया वल्गेरिस, ढेस्कुरैनिया सोफिया, थेलुन्गिएला सालसुजिनिया, थापसी अर्वेंस*

सुखा के प्रति सहिष्णुता	*ब्रेसिका केरिनाटा, ब्रैसिका जुन्सिया, ब्रैसिका टोर्नेफोर्टी, काररिक्टेरा एनुआ, डिप्लोटैक्सिस एक्रिस, डिप्लोटैक्सिस हर्रा, एनरथ्रोकार्पस स्त्रन्गुलेट, एरुका वेसिकेरिया, एरुकारिया बोवेना, एरुका वेसिकेरिया उप-समूह सटाइवा, इरुकेरिया माइक्रोकार्पा, ई. अनकाटा, लेस्केरेला स्पीशीज., मोरिकेंडिया स्पीशीज, फिजोरहाइन्चस स्पीशीज., स्यू सुडेरुकेरिया क्लैवाटा, सविग्न्या परविफ्लोरा, थेलुंगीला सालसुगिनेया, ज़िला स्पिनोसा*
रोग प्रतिरोधी	
सफ़ेद रोली (एल्बुगो कैंडिडा)	*ब्रैसिका केरिनाटा, बी. रैपा, बी. जुन्सिया, बी. निग्रा, ब्रैसिका मॉरोरम, एरुका वेसिकेरिया उप-समूह सटाइवा,, रेफेनस सटाइवस*
काला पत्ता स्पॉट / *अल्टरनेरिया स्पीशीज- अल्टरनेरिया ब्रेसिका, ए. ब्रिसिसिकोला, ए. रफानी*	*अलियारिया पेटियोलाटा, बर्बरीया वल्गेरिस, ब्रैसिका नाइग्रा, ब्रैसिका सीनोस्पेसीज़, ब्रैसिका एलोंगेट, ब्रैसिका फ्रूटिकुलोसा, ब्रैसिका मौरोरम, ब्रैसिका निग्रा, ब्रैसिका प्रोवेसी, ब्रैसिका स्पाइनसेन्स, कैमेलिना सटाइवा, कैप्सैला बर्सा-पास्टरिस, डिप्लोटैक्सिस कैथोलिका, डिप्लोटैक्सिस एरुकोइड्स, डी. टेनुइफोलिया, एरुका वेसिकेरिया उप-समूह सटाईवा, हेमीक्रम्बे फ्रूटिकुलोसा, नेसलिया पैनकिलाटा, रेफेनस सैटिवस, सिनैपिस अल्बा, सिनापिस अर्वेंसिस*
ब्लैकलेग -लेप्टोस्पेरिया मैकुलान (=फ़ोमा लिंगम)	*अरेबिडोप्सिस थेलीआना, ब्रैसिका केरिनाटा, बी. जुन्सिया, बी. नाइग्रा, ब्रैसिका एलोंगाटा, बी. फ्रूटिकुलोसा, ब्रैसिका इंसुलिरिस, बी. एटलांटिका, बी. मैक्रोकार्पा, कैमेलिना सटाइवा, डिप्लोटैक्सिस मुरालिस, डी. टेनुइफोलिया, एरुका वेसिकेरिया, ई. पिन्नाटिफिया, हिर्शफेल्डिआ इन्काना, रेफेनस रेफेनिसट्रम, रेफ़ानस सटाइवस, सिनैपिस अल्बा, सिनापिस अर्वेंसिस, सिसिमब्रियम लोसेली, थापसी अर्वेंस*
डाउनी मिल्ड्यू (पेरोनोस्पोरा पेरासिटीका)	*ब्रैसिका ओलेरासिया, एरुका वेसिकेरिया*
क्लबरुट (प्लास्मोडीओफोरा ब्रेसिकी)	*अरेबिडोप्सिस थेलीआना, आर्मोरैकिया रस्टिकाना, ब्रैसिका रैपा, कैप्सैला बर्सा-पास्टोरिस, रेफेनस स्पीशीज.*
स्क्लेरोटिनिया स्टेम रोट (स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोटिओरम)	*कैप्सैला बर्सा-पास्टोरिस, एरुका वेसिकेरिया उप-समूह सटाइवा,एरुकेस्ट्रम गेलिकम*
वर्टिसिलियम डाहलिया	*आर्मोरेसिया रस्टिकाना*
वर्टिसिलियम लोंगिस्पोरम	*ब्रैसिका नेपस, ब्रैसिका ओलेरासिया, ब्रैसिका रापा*
काला रोट (ज़ैंथोमोनस कैंपेस्ट्रिस)	*एलियारिया पेटियोलाटा, बर्बेरिया वल्गैरिस, ब्रैसिका जुन्सिया, एरीसिएम हिरेसिफोलियम, माथियोला इनकाना, ब्रैसिका केरिनाटा, ब्रैसिका निग्रा, ब्रैसिका रापा*
डिफेंसिन जीन	*फाइटोफ्थोरा इन्फेस्टेन्स के खिलाफ लेपिडियम मेनी में*
कीट प्रतिरोधी	
फ्ली बीटल (फिलोट्रेटा क्रूसिफेरी, पी. स्ट्रायोलाटा)	*अरेबिडोप्सिस थेलियाना, ब्रैसिका इनकाना, ब्रैसिका जुन्सिया, ब्रैसिका विलोसा, कैमेलिना सटाइवा, कैप्सैला बर्सा-पास्टोरिस, क्रैम्बे एबिसिनिका, क्रैम्बे हेपैनिका, सी. ग्लाब्रेटा, सिनैपिस अल्बा, थापसी अर्वेंस*
डायमंड-बैक मोथ (प्लूटेला ज़ाइलोस्टेला)	*बर्बरीया वल्गैरिस, ब्रैसिका जुन्सिया, ब्रैसिका ओलेरासिया, ब्रैसिका नेपस, क्रैम्बे अबीसीनिका, रेफेनस रेफेनिसट्रम*
गोभी चेंपा (ब्रेविकोरीन ब्रासिकी)	*ब्रैसिका फ्रूटिकुलोसा, बी. स्पाइनसेन्स, ब्रैसिका वाइल्ड सी जीनोम, बी. क्रेटिका, बी. इन्काना, बी. मैक्रोकार्पा, बी. विलोसा, एरुका वेसिकरिया उप-समूह सटाईवा, सिनापिस अल्बा*
सरसों चेंपा (लिपाफिस एरिस्मी)	*ब्रैसिका केरिनाटा, बी. नाइग्रा, बी. जुन्सिया, एरुका वेसेरियारिया उप-समूह सटाईवा*

गोभी सफेद मक्खी (*एलेरोड्स प्रोलेटेला)*	*ब्रैसिका क्रेटिका, बी. फ्रूटिकुलोसा, बी. इन्काना, बी. इंसुलिरिस, बी. स्पिनोसा, बी. विलोसा*
गोभी जड़ मक्खी या गोभी मैगट *(डेलिया रेडिकम)*	*ब्रैसिका फ्रूटिकुलोसा, बी. इन्काना, बी. मैक्रोकार्पा, बी. स्पाइनसेंस, बी. विलोसा, कैमेलिना सटाईवा, सिनैपिस अल्बा*
पत्तागोभी बीज वीविल *(सेउथोरिनचस ऑस्ट्रिक्टस)*	*ब्रैसिका जुन्सिया, बी. नाइग्रा, बी. टोर्नेफोर्टि, सिनैपिस अल्बा*
सरसों आरा मक्खी *(अथेलिया प्रॉक्सिमा)*	*कैमेलिना सटाईवा*
निमेटोड प्रतिरोधी	
बीट सिस्ट निमेटोड *(हेटरोडेरा स्कैचटी)*	*रेफेनस सटाईवस, सिनैपिस अल्बा*
रूट–नॉट निमेटोड *(मेलोइडोगाइन स्पीशीज.)*	*एरुका सटाईवा, रेफेनस सटाईवस, रापिस्टुम रुगोसम, सिनैपिस अल्बा*
चारा, हरी खाद, कवर फसलों के लिए स्रोत	*ब्रैसिका स्पीशीज. (लवणी मिट्टी के लिए कवर फसल), ब्रासिकोरैफेनस (रैपारेडिश), एरुका सटाईवा (कवर फसल), मोरिकंडिया मोरिकैंडिओइड्स (कवर फसल), ओरीकोफ्रागमस वायलेसस (चीनी चारे की फसल), रेफेनस सटाईवस (तिलहन मूली), रेफेनस सटाईवस "रापानिस्ट्रोइड्स"(मिट्टी में सुधार), सिनापिस अल्बा*
जैव रासायनिक उपयोग / बायोफ्यूमिगेंट	*क्रैम्बे अबीसीनिका (सीडमील कीटनाशक)*
विशेषता तेलों / आणविक खेती प्रणाली हेतु	
औद्योगिक तेल	*कैमेलिना सटाईवा, क्रैम्बे एबिसिनिका, क्रैम्ब हिस्पैनिका, एरुका वेसिकेरिया उप-समूह सटाईवा, लेस्कुरेला ग्रैंडिफ्लोरा, लूनारिया एनुआ, माल्कोमिया क्रैनुलाटा, मेथियोला लिविडा, सिनैपिस अल्बा, सिसिमब्रियम इरियो, लेपिडियम स्पिनोसुम, ओराइकोफ्रैग्मस वायलेसस*
संभावित नई तेल की फसल	*लेस्कुरेला मेंडोसिना, मेथीयोला इनकाना*
वसा अम्ल	*मेथियोला इनकाना (ओमेगा-३-लिनोलेनिक एसिड), डेस्कुरैनिया सोफिया (लिनोलेनिक एसिड), लेपिडियम सटाईवम (लिनोलेनिक एसिड), लेस्केरेला फेंडरली (हाइड्रॉक्सिक फैटी एसिड)*
मूल्य वर्धित प्रोटीन स्रोत	*क्रैम्बे एबिसिनिका, ब्रैसिका केरिनाटा, क्रैम्ब एबिसिनिका, एरुका सटाईवा, लेस्केरेला फेंडलेरी*
जैव ईंधन की फसल	*थापसी अर्वेंस*
औषधीय, कार्यात्मक खाद्य स्वास्थ्य गुण	*लेपिडियम सटाईवम*
मसालों के स्रोत	*ब्रैसिका जुन्सिया, ब्रैसिका निग्रा, बी. रैपा, आर्मोरेसिया रस्टिसाना, यूटरेमा वसाबी, सिनैपिस अल्बा*
सब्जियों के स्रोत	*ब्रैसिका फ्रूटिकुलोसा (अंकुरित और पत्तियां), ब्रैसिका जुन्सिया (सरसों का साग), ब्रैसिका नैपस (रुतबागा), ब्रैसिका निग्रा (पत्ते, तना), ब्रैसिका ऑलेरासिया (कोल फसलें), ब्रैसिका रापा (शलजम, सरसों का साग, चीनी गोभी), कैकाइल मैरिटिमा (पत्ते), डिप्लोटैक्सिस स्पीशीज (रॉकेट), एरुका वेसिकेरिया सबस्प. सटाईवा (आरूगुला या रॉकेट) लेपिडियम सटाईवम (क्रेस), नास्टर्टियम ऑफ़िसिनेल (वाटर क्रैस), ऑरिकोफ्रेग्मस वायलेसस (फूल के डंठल, चीन), रेफेनस रेफेनिसट्रम (पत्ते, फूल, जड़), रेफ़नस सटाईवस (मूली), सिनेपिस स्पीशीज (तना, पत्ते)*

सजावटी उपयोग	*एलिसम स्पीशीज (मैडवार्ट), अरेबिस स्पीशीज (रॉक क्रेस), ऑब्रिएटा डेल्टोइड (बैंगनी रॉक क्रेस), औरिनिया सैक्सैटिलिस (गोल्डन टफ्ट), ब्रैसिका ओलेरासिया (सजावटी गोभी), डाबा स्पीशीज (व्हित्लो घास), एरीशिएम चीरी (वॉलफ्लॉवर), हेस्परिस मैट्रोनैलिस (डेम का रॉकेट), लोबुलरिया मैरिटिमा (स्वीट एलीसुम), मेथीयोला इनकाना (स्टॉक), ऑरिकोफ्रेग्मस वायलेसस (सजावटी)*

फसल सुधार में जंगली रिश्तेदारों का महत्व

ब्रैसिका के जंगली और करीबी रिश्तेदार कृषि संबंधी विभिन्न लक्षणों के भंडार हैं। इसलिए इनका उपयोग कई लक्षणों जैसे सूखा *(बी. टोर्नेफोर्टी, एरुका सटाइवा),* ठंड *(एरुकास्ट्राम एबिसिकम),* सफ़ेद जंग प्रतिरोधी *(रेफेनस सटाईवस), अल्टरनेरिया ब्लाइट* प्रतिरोधी *(कैमेलिना सटाईवा, डिप्लोटैक्सिस एरुकॉइड्स, सिनापिस अल्बा)* चेंपा, चूर्णिल असिता, अल्टरनेरिया ब्लाइट, निमेटोड, पुरुष बाँझपन *(मोरिकेंडिया अर्वेन्सिस),* उच्च प्रकाश संश्लेषक दर *(एनरथ्रोकार्पस लिरैटस),* फली झड़ने के प्रतिरोधी *(एनरथ्रोकार्पस लिरैटस, बी. टोर्नेफोर्टी)* आदि को खेती की किस्मों में स्थानान्तरण हेतु किया जा सकता है। जंगली सहयोगियों से गुणात्मक और मात्रात्मक वर्णों को संचालित करने वाले जीनों को पारंपरिक प्रजनन विधियों के अलावा, इन–विट्रो विधियों जैसे सोमैटिक सेल आनुवंशिकी और पुनः संयोजक डीएनए तकनीक के द्वारा अन्तरर्प्रजातीय और अंतरजेनेरिक हस्तांतरण किया जा सकता है। अतः इन प्रजातियों के फसल सुधार कार्यक्रम में प्रभावी उपयोग के लिए इनके समुचित संग्रह, व्यवस्थित लक्षण वर्णन, प्रलेखन और संरक्षण किये जाने की आवश्यकता है।

रेफरेन्सेज

- Prakash, S., Bhatt, S.R. Kirti, P.B. (2004). Utilization of wild germplasm for Brassica improvement in India. Brassica. 6(1&2):1-8.
- Radhamani J., Singh R., Srinivasan K., Tyagi, R.K. (2013). Conservation of trait specific germplasm of Brassica in national genebank. NBPGR, New Delhi, India. 114p.
- Warwick S.I., Francis A. and Gugel R.K. (2009). Guide to Wild Germplasm of Brassica and Allied Crops (tribe Brassiceae, Brassicaceae) 3rd Edition.

❑❑❑

सरसों सारे देश में पैदा करे किसान,
पर आता नम्बर प्रथम पर, ये मेरा प्यारा राजस्थान।

अरेबिडोप्सिस थेलियाना: ब्रैसिका परिवार का एक आदर्श पौधा

हरिओम कुमार शर्मा, पंकज शर्मा, हरि सिंह मीना
भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

अरेबिडोप्सिस थेलियाना (ऑर्डरः ब्रेसिकेल्स; फॅमिलीः ब्रेसिकेसी), थेल क्रेस, माउस–ईअर क्रेस या अरेबिडोप्सिस, एक छोटा सा पुष्पीय पौधा है। यह सर्दियों के मौसम में वार्षिक खरपतवार के रूप में पाया जाता है। *ए. थेलियाना* पौधा एक जटिल बहुकोशिकीय यूकेरियोट के लिए, बायोलॉजी और जेनेटिक्स में एक लोकप्रिय मॉडल जीव है। *ए. थेलियाना* में लगभग 125 Mb का अपेक्षाकृत छोटा जीनोम होता है। यह पहला जीनोम है जो कि अनुक्रम (सीक्वेंस) किया गया तथा पुष्प के उद्विकास और प्रकाश संवेदीकरण सहित पौधों के कई लक्षणों के आणविक जीव विज्ञान को समझने के लिए यह पौधा एक लोकप्रिय उपकरण साबित हुआ है। *ए. थेलियाना*, वैज्ञानिकों के लिये फूल वाले पौधो की वृद्धि के लिए आवश्यक जीन के मूल टूलबॉक्स की जानकारी प्रदान करता है।

पौधे की वानिस्पतिक संरचना

अरेबिडोप्सिस थेलियाना आमतौर पर 20–25 सेमी तक बढ़ता है। पौधे के आधार पर पत्तियां एक रोसेट बनाती हैं, कुछ पत्तियां फूल के तने पर भी होती हैं। तने के नीचे की पत्तियां हरे रंग की तथा थोड़ी बैंगनी होती हैं, पत्ती 1.5–5 सेंटीमीटर लंबी और 2–10 मिमी चौड़ी होती हैं, जो कि किनारों से पूरी तथा थोड़ी सी आरी के समान होती हैं; तने की पत्तियां छोटी और बिना डंठल वाली आमतौर पर एक पूरे मार्जिन के साथ होती हैं। पत्तियां छोटे, एककोशिकीय बालों से ढकी होती हैं जिन्हें ट्राइकोम्स कहा जाता है। फूल छोटे, सफेद, चार–पंखुड़ी वाले 3 मिमी व्यास के होते हैं, जो स्वाभाविक रूप से स्वपरागण करते हैं। फल 5–20 मिमी लंबे होते हैं जिन्हें सिलिकुआ कहा जाता है, जिसमें 20–30 बीज होते हैं। जड़ें एकल प्राथमिक जड़ के साथ संरचना में सरल होती हैं।

उत्पत्ति और वितरण

अरेबिडोप्सिस जीनस का नाम ग्रीक से आता है, जिसका अर्थ है "अरबियों जैसा"। *ए. थेलियाना* यूरोप, एशिया, अफ्रीका में मूल रूप से पाया जाता है और इसका वितरण भूमध्यसागरीय से स्कैंडिनेविया तथा स्पेन से ग्रीस तक लगातार पाया जाता है। यह अफ्रीका और दक्षिण अफ्रीका में उष्णकटिबंधीय अल्पाइन पारिस्थितिकी प्रणालियों में भी मूल रूप में होता है। *ए. थेलियाना* आसानी से चट्टानी, रेतीले और शांत मिट्टी पर बढ़ता है। आमतौर पर इसे कृषि क्षेत्र, सड़क के किनारे, रेलवे लाइनों, बेकार जमीन और अन्य अशांत निवास स्थान में व्यापक वितरण के कारण एक खरपतवार माना जाता है। इसके हजारों प्राकृतिक प्रकारों (इकोटाईप) को इसके प्राकृतिक और नए क्षेत्रों से एकत्र किया गया है।

अरेबिडोप्सिस थेलियाना पर शोध का इतिहास

वर्ष	विवरण
1577	पौधे को सबसे पहले जोहान्स थेल द्वारा हार्ज़ पर्वत में वर्णित किया गया था, जिन्होंने इसे *पिलोसेला सिलीकोसा* कहा था।
1753	कार्ल लिनिअस ने थेल के सम्मान में पौधे को *अरेबिस थेलियाना* नाम दिया।
1842	जर्मन वनस्पतिशास्त्री गुस्ताव हेनहोल्ड ने नए *जीनस अरेबिडोप्सिस* का निर्माण किया और उस जीनस में पौधे को रखा।
1873	अलेक्जेंडर ब्रौन ने *ए. थेलियाना* में पहले उत्परिवर्ती (म्यूटेंट) "डबल फूल फीनोटाइप" का वर्णन किया।
शुरुआती 1900	वनस्पतिशास्त्रियों और जीवविज्ञानियों ने *ए. थेलियाना* पर शोध करना शुरू किया।
1907	फ्रेडरिक लाएबके ने *अरेबिडोप्सिस* के गुणसूत्र संख्या को प्रकाशित किया।
1943	फ्रेडरिक लाएबके ने बताया कि *ए. थेलियाना* एक अच्छी प्रायोगिक प्रणाली हो सकती है और उन्होंने बड़ी संख्या में *ए. थेलियाना* के प्राकृतिक प्रकार संग्रहित किए। उन्होंने *ए. थेलियाना* को एक मॉडल जीव के रूप में प्रस्तावित किया।
1945	पहले म्यूटेंट का व्यवस्थित विवरण किया गया। एर्ना रेनहोलज़ ने एक्स–रे उत्परिवर्तन का उपयोग करके उत्पन्न *ए. थेलियाना* म्यूटेंट का पहला संग्रह प्रकाशित किया।

1965	पहला अंतर्राष्ट्रीय अरेबिडोप्सिस सम्मेलन गोटिंगेन, जर्मनी में आयोजित किया गया।
1983	*ए. थेलियाना* का पहला आनुवांशिक मानचित्र कूर्ननीफ व उसके साथियों द्वारा प्रकाशित किया गया था।
1986	टी–डीएनए–मध्यस्थता परिवर्तन (ट्रांसफॉर्मेशन) और पहले क्लोन *ए. थेलियाना* जीन का वर्णन किया गया।
1990	डबल फूल फीनोटाइप म्यूटेंट के उत्परिवर्तित जीन को 'अगेमस' नाम दिया गया तथा क्लोन किया गया।
1991	*ई. कोएन* और *ई. मेयरोविट्ज* ने होमेओटिक म्यूटेशन्स का अवलोकन किया और फूलों के विकास के एबीसी मॉडल को प्रस्तावित किया।
1996	अरेबिडोप्सिस जीनोम इनिशिएटिव (AGI) शुरू हुआ।
1999	गुणसूत्र 4 और 2 के अनुक्रमों (सीक्वेंस) के विवरण प्रकाशित किए गए।
2000	प्रकृति (नेचर) पत्रिका में *ए. थेलियाना* का पूरा जीनोम अनुक्रम प्रकाशित हुआ। *अरेबिडोप्सिस जीनोम इनिशिएटिव.* 2000. फूल के पौधे अरेबिडोप्सिस थेलियाना के जीनोम अनुक्रम का विश्लेषण. नेचर, 408:796.815
2000	राइस विश्वविद्यालय के जेनेट ब्रैम ने आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा *ए. थेलियाना* विकसित किया जो कि अंधेरे में छूने पर चमकता था।
2019	चीन के चांग'ए–4 लैंडर ने *ए. थेलियाना* को चंद्रमा पर लाया। लैंडर में एक छोटे से सूक्ष्म 'टिन' में *ए. थेलियाना,* आलू के बीज तथा रेशम के कीड़ों के अंडे भी थे।

जीनोम का आकार

यह पहला पादप जीनोम था, जिसे 2000 में अरेबिडोप्सिस जीनोम इनिशिएटिव (तालिका 2) द्वारा पूरा किया गया था। कुल 125 एमबी में से 115.4 एमबी का अनुक्रम हुआ। *ए. थेलियाना* जीनोम का सबसे अद्यतित संस्करण अरेबिडोप्सिस सूचना संसाधन (The Arabidopsis Information Resource-TAIR) द्वारा रखा जाता है।

तालिका 2: *ए. थेलियाना* के जीनोम की जानकारी।

जीनोम	जीनोम का आकार	जीन की संख्या	डुप्लीकेशन (%)	प्रोटीन जीन (सं)	ट्रांसपोज़ोन (%)
केन्द्रक(न्यूक्लीयर) जीनोम	125 Mb	~2700	60	25,490	14
क्लोरोप्लास्ट जीनोम	154 kb	136	17	79	0
माइटोकॉन्ड्रियल जीनोम	367kb	57	10	58	4

(**स्रोत :** TAGI, 2000)

आदर्श पौधे के रूप में उपयोग

अरेबिडोप्सिस थेलियाना एक प्रथम श्रेणी का मॉडल जीव है जिसके लिए एक उच्च–गुणवत्ता वाला संदर्भ जीनोम अनुक्रम (सीक्वेंस) निर्धारित किया गया है, और दुनिया भर में अनुसंधान समुदाय ने इसके लिये कई अन्य आनुवंशिक संसाधनों का विकास किया है। *ए. थेलियाना* के प्रयोगात्मक लाभ ने कई महत्वपूर्ण खोजों को सक्षम किया है। अरेबिडोप्सिस को फूलीय पौधों की 200,000 से अधिक प्रजातियों के लिए एक आनुवांशिक मॉडल माना जाता है, जिनमें से प्रत्येक इस पौधे के साथ बुनियादी संरचना और इसी तरह की जैव रासायनिक प्रक्रियाओं को साझा करता है। वैज्ञानिकों ने जीन को खोजने के लिए मॉडल के रूप में पिछले 40 वर्षों से अरेबिडोप्सिस का उपयोग किया है और इसे अन्य पौधों, जैसे चावल, मक्का, आलू या टमाटर में बराबर जीन खोजने के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में उपयोग किया है। *ए. थेलियाना* अब व्यापक रूप से पौधे विज्ञान का अध्ययन करने के लिए उपयोग किया जाता है, जिसमें आनुवंशिकी, उद्भव

विज्ञान (इवोल्यूशनरी बायोलॉजी), जनसंख्या आनुवंशिकी (पापुलेशन जेनेटिक्स) और पादप विकासात्मक बायोलॉजी (डेवलपमेंटल बायोलॉजी) शामिल हैं। हालांकि *ए. थेलियाना* का कृषि के लिए बहुत कम महत्व है, लेकिन इसके कई लक्षण हैं जो इसे फूलों के पौधों के आनुवंशिक, सेलुलर और आणविक जीव विज्ञान को समझने के लिए एक उपयोगी मॉडल बनाते हैं। पौधे की इस प्रजाति की निम्नलिखित विशेषताओं के कारण इसका उपयोग मॉडल प्रणाली के रूप में किया जाता है।

- *ए. थेलियाना* का जीवन चक्र छोटा है; छह सप्ताह के भीतर बीज अंकुरित होता है, बढ़ता है, फूल आता है, और 5000 तक संतान /बीज पैदा करता है।
- अरेबिडोप्सिस का पौधा छोटे आकार (20 सेमी तक की ऊँचाई) का होता है इसलिए इसे पेट्री प्लेट्स, गमलों, या हाइड्रोपोनिक्स में फ्लोरसेंट लाइट्स के तहत, ग्रीनहाउस में या लैब स्थितियों में उगाया जा सकता है।
- यह एक स्वपरागित, द्विगुणित प्रजाति है स्वपरागण के कारण अप्रभावी (रेसेसिव) उत्परिवर्तन होमोज़ाइगस हो जाते हैं और अभिव्यक्त हो जाते हैं ।
- अरेबिडोप्सिस में अपेक्षाकृत छोटे और गैर–दोहराव वाला जीनोम (125Mb) है। इसमें 5 जोड़े गुणसूत्र होते हैं (2n=2X=10)। गेहूं और मकई जैसे प्रमुख फसल पौधों में जीनोम अरबों लंबे होते हैं। अतः अरेबिडोप्सिस का जेनोम, तुलनात्मक, बहुत छोटा होता है। इसलिए, इसे जीनोम अनुक्रमण के लिए एक मॉडल जीव के रूप में चुना गया।
- *ए. थेलियाना* के बड़ी संख्या में प्राकृतिक वेरिएंट (इकोटाईप) उपलब्ध हैं।
- *ए. थेलियाना* में मकई, सोयाबीन और गेहूं जैसे अधिक जटिल फसल पौधों के साथ बुनियादी समानता है। इसलिए इसके बारे में बुनियादी जानकारी आसानी से अन्य आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण पौधों पर लागू की जा सकती है।
- यह आसानी से आनुवंशिक जोड़तोड़ के लिए प्रतिसंवेदी है। *ए. थेलियाना* का आनुवंशिक परिवर्तन नियमित रूप से, सरल "पुष्प डुबकी" प्रोटोकॉल द्वारा किया जाता है। दूसरे जीव के डीएनए को अरेबिडोप्सिस के जीनोम में स्थानांतरित करने के लिए *एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमफैसीन्स* का उपयोग किया जाता है। "पुष्प डुबकी" प्रोटोकॉल में टिशू कल्चर या प्लांट पुनर्जनन की आवश्यकता नहीं होती है।
- अरेबिडोप्सिस की सबसे मूल्यवान विशेषताओं में से एक जीनोमिक टिंकरिंग यानि जीनों को जोड़ना या घटाना की विशिष्टता है, इसमें आसानी से जीनों के कार्यों को बंद (नॉक आउट) या ईएमएस जैसे रसायनों का उपयोग करके यादृच्छिक आनुवंशिक उत्परिवर्तन पैदा किये जा सकते हैं।
- अरेबिडोप्सिस जीन नॉकआउट संग्रह पौध जीव विज्ञान के लिए एक अनूठा संसाधन है जिन्हें उच्च–थ्रोपुट ट्रांसफॉर्मेशन द्वारा आसानी से उपलब्ध किया जा सकता है।
- अरेबिडोप्सिस में उत्परिवर्तन आसानी से पैदा किये जा सकते है, सामान्य तौर पर, *ए. थेलियाना* की बड़ी संख्या में उत्परिवर्ती लाइनें स्टॉक केंद्रों के माध्यम से उपलब्ध हैं, जिनमें से सबसे प्रसिद्ध नॉटिंघम अरेबिडोप्सिस स्टॉक सेंटर–एनएएससी हैं।
- अरेबिडोप्सिस शोध के लिए डीएनए माइक्रोएरे तकनीक को तेजी से अपनाया गया जिनके द्वारा विभिन्न ऊतकों में विभिन्न परिस्थितियों में जीन अभिव्यक्ति के "एटलस" को विकसित किया गया। *ए. थेलियाना* जीनोम सीक्वेंस, कम लागत वाले सेंगर सीक्वेंसिंग की मदद से और ट्रांसफॉर्मेशन की सहजता के कारण जीनोम–वाइड म्यूटेनेसंस, ट्रांसपोज़न म्यूटेंट सीक्वेंस इंडेक्स और (विशेषकर) टी–डीएनए म्यूटेंट लाइनों के संग्रह को विकसित किया गया। *ए. थेलियाना* प्राकृतिक आनुवंशिक भिन्नता के अध्ययन के लिए एक प्रमुख मॉडल है, जिसमें जीनोम–वाइड एसोसिएशन अध्ययन शामिल हैं। क्रिस्पर (CRISPR) टूल्स के साथ लघु आरएनए (sRNA) निर्देशित डीएनए संपादन (DNA एडिटिंग) तकनीक का उपयोग थेलियाना में किया जाने लगा है।
- *ए. थेलियाना* प्रकाश माइक्रोस्कोपी विश्लेषण के लिए अच्छी तरह से अनुकूल है। पूरी तरह से युवा अंकुर, और विशेष रूप से उनकी जड़ें, अपेक्षाकृत पारभासी हैं। इस प्रजाति के छोटे आकार के कारण प्रतिदीप्ति (fluorescence) और कोंफोकल (confocal) लेजर स्कैनिंग माइक्रोस्कोपी दोनों का उपयोग कर लाइव सेल इमेजिंग की जा सकती है।

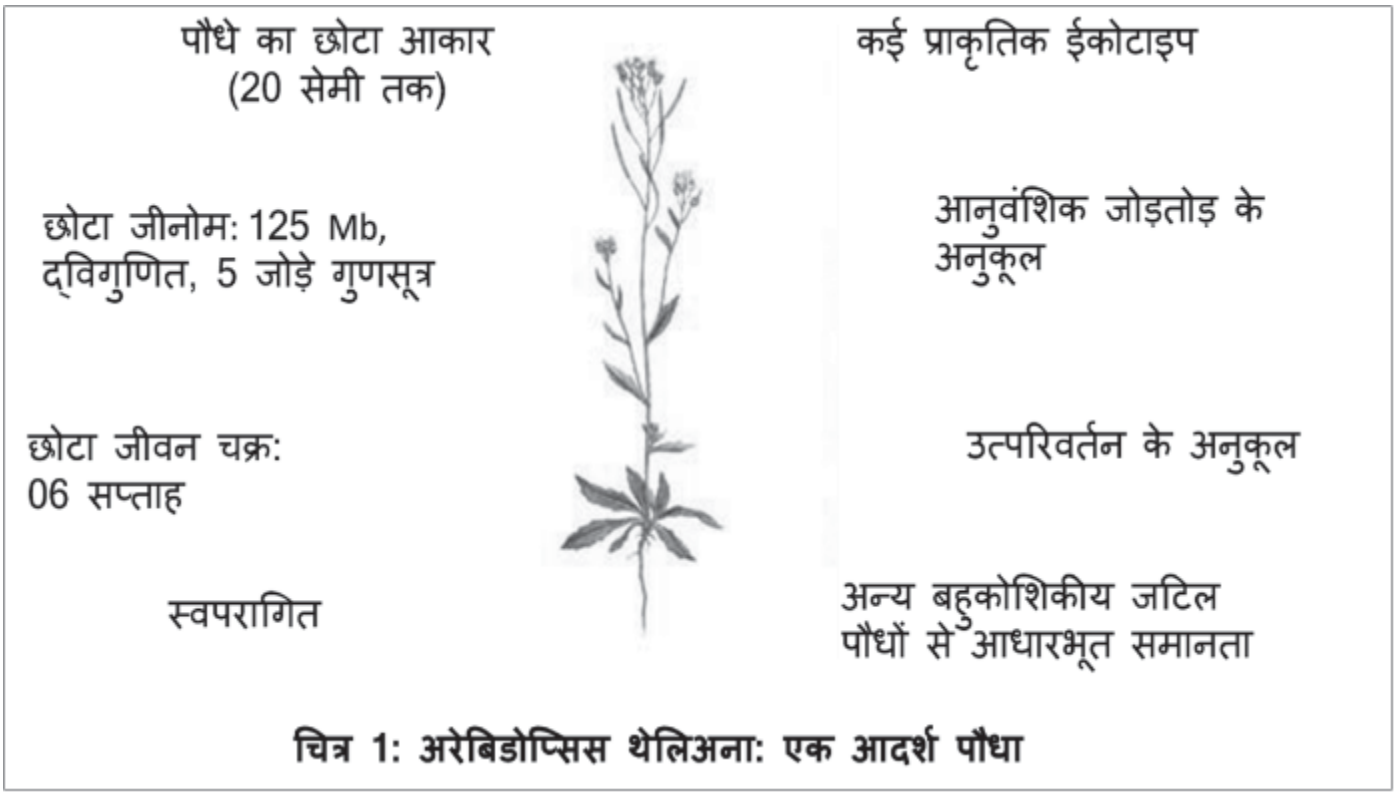

चित्र 1: अरेबिडोप्सिस थेलिअना: एक आदर्श पौधा

चित्र स्रोतः http://www.abcam.com/index.html?pageconfig=resource&rid=11682&pid=5

फूलों की संरचना के विकास का अध्ययन

ए. थेलियाना को फूल विकास के लिए एक मॉडल के रूप में बड़े पैमाने पर अध्ययन किया गया है। विकासशील फूल में चार मूल अंग होते हैंः बाह्यदल, पंखुड़ी, पुंकेसर, और अंडप एक व्होरल की श्रेणी में व्यवस्थित होते हैंः बाहरी व्होरल पर चार बाह्यदल, इसके बाद चार पंखुड़ियां, छह पुंकेसर और एक केंद्रीय अंडप। *ए. थेलियाना* में होमेओटिक म्यूटेशन के परिणामस्वरूप पुष्प का एक अंग, दूसरे अंग में परिवर्तित हो जाता है। ई. कोएन और ई. मेयरोविट्ज ने इन होमेओटिक म्यूटेशन्स का अवलोकन किया और फूलों के विकास के एबीसी मॉडल को प्रस्तावित किया।

पत्तियों की संरचना के विकास का अध्ययन

ए. थेलियाना के अध्ययन ने पत्ती के मोर्फोजेनेसिस के आनुवांशिकी के संबंध में काफी अंतर्दृष्टि प्रदान की है, विशेष रूप से बीजपत्री (डाईकोटीलिडॉन) प्रकार के पौधों में। *ए.थेलियाना* पत्ते की संरचना के विकास के अध्ययन के लिए अच्छी तरह से अनुकूल हैं क्योंकि वे अपेक्षाकृत सरल और स्थिर होती हैं।

पादप कार्यिकी का अध्ययन

फोटोरिसेप्टर्स फाइटोक्रोमस ए, बी, सी, डी, और ई लाल प्रकाश–आधारित फोटोट्रोपिक प्रतिक्रिया में मध्यस्थता करते हैं। इन रिसेप्टर्स के कार्य को समझने से पौधे के जीवविज्ञानी को पौधों में फोटोपीरिओडिस्म, अंकुरण, डी–ईटिओलेशन और छाया से बचाव को नियंत्रित करने वाले सिग्नलिंग कैस्केड को समझने में मदद मिली है। *ए. थेलियाना* का उपयोग फोटोट्रोपिज्म, क्लोरोप्लास्ट अलाइनमेंट, स्टोमैटल अपर्चर, क्रिप्टोक्रोम (सर्कैडियन रिदम) और अन्य नीले प्रकाश–प्रभावित प्रक्रियाओं के आनुवंशिक आधार के अध्ययन में बड़े पैमाने पर किया गया है।

पादप–रोगज़नक़ परस्पर क्रिया का अध्ययन

यह समझना महत्वपूर्ण है कि पौधे दुनिया के खाद्य उत्पादन, साथ ही साथ कृषि उद्योग की रक्षा के लिए प्रतिरोध कैसे हासिल करते हैं। *ए. थेलियाना* पौधों और रोग पैदा करने वाले रोगजनकों के बीच परस्पर क्रिया के अध्ययन और पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को समझने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण रहा है। इनके अध्ययन के लिये *ए. थेलियाना* में उसके अपने प्राकृतिक फिलामेंटस रोगज़नक़ *हायलोपेरोनोस्पोरा*

अरेबिड़ोप्सिडीस, मॉडल पादप–पैथोजेनिक जीवाणु *स्यूडोमोनस सीरिंज* और कई अन्य रोगाणुओं का उपयोग किया गया है। प्रणालीगत अधिग्रहित प्रतिरोध (एसएआर) इसका एक और उदाहरण है जो कि *ए. थेलियाना* में किए गए शोध के कारण पौधों में बेहतर समझा जाता है

अंतरिक्ष में अनुसंधान

अरबिडोप्सिस थेलियाना पर अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन पर यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी द्वारा माइक्रोग्रैविटी में बीज से बीज तक पौधों के विकास और प्रजनन का अध्ययन करने के लिए अनुसंधान किया जा रहा है।

अरेबिडोप्सिस सूचना संसाधन

अरेबिडोप्सिस सुचना संसाधन (TAIR) मॉडल पादप *ए. थेलियाना* के लिए आनुवंशिक और आणविक जीवविज्ञान डेटा का एक डेटाबेस रखता है। टेअर (TAIR) के डेटाबेस में पूरे जीनोम अनुक्रम के साथ जीन संरचना, जीन उत्पाद जानकारी, जीन अभिव्यक्ति, डीएनए और बीज भंडार, जीनोम मानचित्र, आनुवंशिक और भौतिक मार्कर, प्रकाशन और अरेबिडोप्सिस अनुसंधान समुदाय के बारे में जानकारी उपलब्ध है।

रेफरेन्सेज

- http://www.abcam.com/index.html?pageconfig=resource&rid=11682&pid=5
- https://en.wikipedia.org/wiki/Arabidopsis_thaliana
- https://en.wikipedia.org/wiki/History_of_research_on_Arabidopsis_thaliana
- https://www.arabidopsis.org/
- https://www.biology-pages.info/A/Arabidopsis.html
- The Arabidopsis Genome Initiative. 2000. Analysis of the genome sequence of the flowering plant Arabidopsis thaliana. Nature, 408:796–815

❑❑❑

सरसों की सुनो कहानी रे, सरसों की सुनो कहानी।
पैदा करे किसान खेत में,
किस्म बहुत मन-मानी रे, सरसों की सुनो कहानी रे।।

सरसों उत्पादन की वैज्ञानिक विधि

चेतन कुमार दौतानियाँ[1], रमेश चन्द्र साँवल[1], राजेश कुमार दौतानियाँ[2]
[1]मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, कृषि महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
[2]भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

कृषि उत्पादों में खाद्यान्नों के बाद दूसरा स्थान तिलहनों का आता है। देश में रबी फसल में उगाये जाने वाली तिलहनी फसलों में सरसों मुख्य फसल के रूप में उगाई जाती है। भारत में इसकी खेती राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, आदि राज्यों में होती है। राजस्थान सरसों के उत्पादन में भारत का अग्रणी राज्य है। इसकी खेती सिंचित एवं संरक्षित नमी में बारानी क्षेत्रों में आसानी से की जा सकती है। यह फसल कम लागत और कम सिंचाई सुविधा में भी अन्य फसलों की तुलना में सबसे अधिक लाभ प्रदान करती है। यह भी देखा गया है कि विभिन्न उत्पादन तकनीकी के प्रयोग से सरसों की पैदावार में बढ़ोतरी की जा सकती है।

सरसों की उपयोगिताः– सरसों के बीज से निकलने वाले तेल का प्रयोग विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थ बनाने व शरीर पर लगाने में करते है। सरसों के तेल से अचार, साबुन तथा ग्लिसराल बनाने के काम में भी लेते है। तेल निकालने के बाद प्राप्त खली मवेशियों (पशुओं) को खिलाने के काम आती है ओर खली का उपयोग उर्वरक के रूप में भी होता है। इसका सूखा डंठल जलाने के काम में आता है। इसके हरे पत्तों से सब्जी भी बनाई जाती है। जर्मनी में सरसों के तेल का उपयोग जैव ईंधन के रूप में भी किया जाता है। सरसों एक बहु–उपयोगी फसल है इसकी वैज्ञानिक खेती निम्न प्रकार से कर सकते हैं।

खेत का चयन एवं तैयारीः– इसकी खेती हेतु सबसे उपयुक्त दोमट मिट्टी होती है। फिर भी इसकी भरपूर उपज गहरी उर्वरा एवं अच्छी जल धारण क्षमता वाली हल्की सी भारी मिट्टी में भी प्राप्त कर सकते है। खेत की तैयारी करते समय पहले मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई कर मिट्टी को भुरभुरी कर लेवें। नमी के अनावश्यक ह्रास को रोकने के लिये जुताई के बाद पाटा लगा देवें, जिससे खेत समतल भी हो जाता है। दीमक व अन्य कीटों की रोकथाम हेतु बुवाई से पूर्व अन्तिम जुताई के समय क्यूनॉलफॉस 15 प्रतिशत चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से खेत में डालकर जुताई कर मिला देंवे। सरसों की बारानी खेती के लिये समय–समय पर खेत की स्थिति के अनुसार 4–6 जुताई करें एवं वर्षा के पानी का ज्यादा से ज्यादा संरक्षण करें।

सरसों की उन्नत किस्में

किस्म	पैदावार (किग्रा./है.)	तेल की मात्रा (प्रतिशत)	अवधि
एनआरसीडीआर–2	1951–2626	36.5–42.5	131–156
एनआरसीएचबी–506 संकर	1550–2542	38.6–42.5	127–148
एनआरसीडीआर–601	1939–2626	38.7–41.6	137–151
एनआरसीएचबी–101	1382–1491	34.6–42.1	105–135
डीआरएमआर–आईजे31 (गिरिराज)	2225–2750	39–42.6	137–153
डीआरएमआर150–35	1828	39.6	86–140
डीआरएमआर 1165–40	2200–2600	40–42.5	133–151
एनआरसीवाईएस–05–02 (पीली सरसों)	1239–1715	38.2–46.5	94–181
वरूणा	2000–2500	43	125–130
पूसा जयकिसान	1600–2200	40	112–135
पूसा गोल्ड	1800	42	110–145
आर्शीवाद	1437–1684	37–41	125–130

बीज, बीजोपचार एवं बुवाईः—बीज दर, बुवाई का समय, किस्म एवं खेत में नमी पर निर्भर करती है। शुष्क क्षेत्र में बुवाई हेतु 5—6 कि.ग्रा. तथा सिंचित क्षेत्र में 3—4 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर की दर से काम में लेवें। बुवाई के समय पौधे से पौधे की दूरी 10—15 से.मी. तथा कतार से कतार की दूरी 30—45 से.मी. रखें, साथ ही बीजों की गहराई 4—5 से.मी. तक रखें। बीज को तीन ग्राम मैंकोजेब या थायरम या एपरॉन 35 एस.डी. 6 ग्राम या ट्राइकोडर्मा 6 ग्राम या इमेडाक्लोप्रिड 6 मि.ली. या थायोमेथोक्साम 6 मि.ली. प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके बीजाई करें। बारानी क्षेत्रों में सरसों की बुवाई 15 सितम्बर से 15 अक्टूबर तक एवं सिंचित क्षेत्रों में इसकी बीजाई अक्टूबर के अन्त तक जरूर कर देनी चाहिए। इसकी बुवाई के लिये उपयुक्त तापमान 18—25 डिग्री सैल्सियस होता है।

पोषक तत्व प्रबन्धनः— सिंचित फसल में 8—10 टन प्रति हैक्टेयर गोबर की खाद या कम्पोस्ट बुवाई से 20—25 दिन पूर्व खेत में डालकर तैयार करें। सिंचित फसल के लिये 80—90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30—40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 किलो पोटाश एवं 200—250 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति हैक्टेयर देवें। सिंचित क्षेत्रामें नाइट्रोजन की आधी तथा फॉस्फोरस तथा पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा बुवाई से पूर्व ऊर कर देवें। नत्रजन की शेष मात्रा प्रथम सिंचाई के साथ दें। सरसों की फसल को गन्धक की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है अत; नाइट्रोजन को अमोनियम सल्फेट एवं फॉस्फोरस को सिंगल सुपर फॉस्फेट के द्वारा देना अधिक लाभदायक होता है, यदि जिप्सम का प्रयोग नहीं किया गया तो 25—40 किलो सल्फर प्रति हैक्टेयर बुवाई से 3 सप्ताह पूर्व मिट्टी में मिला दें।

फसल चक्रः— मक्का—सरसों, मूंग/उड़द—सरसों, ज्वार/चंवला/लाबिया—सरसों, हरी खाद (ढेंचा/लोबिया/सनई) सरसों, उपरोक्त चक्र को अपनाकर सरसों से अधिक उपज ली जा सकती है।

सिंचाई प्रबन्धनः— प्रथम सिंचाई बुवाई के 35—40 दिन बाद फूल आने से पहले तथा अधिक बीजोत्पादन के लिये दूसरी सिंचाई 70—80 दिन बाद करें। यदि एक ही सिंचाई उपलब्ध हो तो बुवाई के 45—50 दिन बाद करनी चाहिए। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में समुचित जल निकास की व्यवस्था करना अति आवश्यक है। सिंचाई क्यारी विधि से करे।

खरपतवार नियंत्रणः— खरपतवारों को खेत से निकालने और नमी संरक्षण के लिए बुआई के 25 से 30 दिन बाद निराई—गुड़ाई करे। खरपतवारों के कारण सरसों की उपज में 60 प्रतिशत तक की कमी आ जाती है। खरपतवार नियंत्रण के लिए खुरपी एवं हैण्ड—हो का प्रयोग करें। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए फ्लुक्लोरेलिन (45 ई.सी.) की एक लीटर सक्रिय तत्व/हेक्टेयर (2—2 लीटर दवा) की दर से 800 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के पूर्व छिड़काव कर भूमि में भली—भांति मिलाये अथवा पेन्डीमिथेलीन (30 ई.सी) की 1 लीटर सक्रिय तत्व/हेक्टेयर (3—3 लीटर दवा को 800 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के 1—2 दिन के अन्दर छिड़काव करना चाहिए।

जैव नियामकों व सूक्ष्म तत्वों का प्रयोगः— खड़ी फसल में थायोयूरिया 0—1 प्रतिशत के दो छिड़काव प्रथम 45 दिन व दूसरी 60 दिन पर करने से उपज में वृद्धि होती है। अनुसंधानों से पता चला है कि 1—1.75 ग्राम एसीटिक एसिड को 100 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के 75 से 80 दिन पर छिड़काव करने से उपज में वृद्धि होती है। खड़ी फसल में जिंक की कमी दिखाई देने पर 50 दिन की फसल पर 0—5 प्रतिशत जिंक सल्फेट व 0—25 प्रतिशत बुझे हुए चूने का घोल बनाकर छिड़काव करें।

पाले से बचावः— सरसों को पाले से बचाने के लिये 0—1 प्रतिशत गन्धक के अम्ल का खड़ी फसल पर पाला पड़ने की सम्भावना होने पर एक दो बार छिड़काव करें। लगभग 0—1 प्रतिशत थायोयूरिया एवं 0—4 पी.पी.एम. ब्रैसीनोस्टेरोराइड का छिड़काव भी किसी तरह के जलवायु दबाव से बचने के लिये प्रयोग कर सकते हैं।

रोग एवं कीट प्रबन्धनः—

- झुलसाः— पत्तियों पर छोटे गोल भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। यह धब्बे धीरे—धीरे बढ़कर आपस में मिल जाते हैं। अधिक संक्रमण होने पर फलियॉं काले रंग की होकर सड़ भी सकती है। बीज सिकुड़े हुए एवं छोटे रह जाते हैं।
- सफेद रोलीः— पत्तियों पर उभरे हुए चमकीले सफेद अनियमित आकार के धब्बे अथवा फफोले दिखाई देते हैं। ये फफोले धीरे—धीरे आकार में बड़े होकर आपस में मिल जाते हैं। संक्रमण की तीव्रता बढ़ने पर पत्तियों की बाह्य त्वचा फट जाती है, पत्तियों पर सफेद चूर्ण दिखाई देता है।
- तना गलनः— इस रोग के लक्षण फसल बुवाई के 60 से 65 दिन बाद दिखाई देते हैं। रोगग्रस्त पौधे पर भूमि की सतह के पास बड़े—बड़े सफेद चकते बन जाते हैं। धब्बे वाले स्थान को चीरकर देखने पर

रोगकारक फफूंद के काले रंग के बड़े–बड़े बीजक दिखाई देते हैं। रोगग्रस्त पौधा 7–10 दिन में सूख जाता है।

- छाछ्याः– यह रोग दिखाई देते ही प्रति हैक्टेयर 20 किलो गन्धक चूर्ण भुरकें या 2–5 किलो घुलनशील गन्धक का 3–4 प्रतिशत घोल या 750 मि.ली. केराथीन एल.का 0–1 प्रतिशत पानी में घोल बनाकर छिड़कें।

नियन्त्रण :–

- बुवाई पूर्व सरसों के बीजों को मैंकोजेब 3 ग्राम अथवा एप्रोन 6 ग्राम प्रति किलो की दर से उपचारित करें।
- रोग के लक्षण दिखाई देते ही मैंकोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर का छिड़काव करें।
- रोगग्रस्त खेतों में लगातार सरसों लेने पर प्रकोप बढ़ता है। अतः फसल चक्र अवश्य अपनायें।
- बुवाई पूर्व, उपरोक्तानुसार बीज उपचार करें। फसल 60–65 दिन की होने पर 2 ग्राम प्रति लीटर कार्बेण्डाजिम अथवा रिडोमिल 1 ग्राम प्रति लीटर घोल बनाकर छिड़कें।

कीट एवं नियन्त्रण :–

- पेन्टेड बगः– इसे चितकबरा या दागीला कीड़े के नाम से भी जाना जाता है। इस कीड़े की निम्फ एवं प्रौढ़ दोनों ही अवस्थायें पौधे के कोमल भागों से रस चूसकर नुकसान पहुचाते हैं। इसकी रोकथाम के लिये सरसों की बुवाई 7–10 दिन के अन्दर मिथाईल पैराथियान 2 प्रतिशत चूर्ण या क्यूनालफॉस 1–1.25 सेमी. या कार्बारिल 5 प्रतिशत पाउडर 25 किलो प्रति हैक्टेयर भुरकाव करना चाहिए।
- आरा मक्खीः– इसकी लटे पत्तियों में छेद करके खाना प्रारम्भ करती है तथा नई पत्तियों को खाना ज्यादा पसन्द करती है। ज्यादा आक्रमण होने पर पौधा पूर्णतया पत्तीरहित रह जाता है। रोकथाम हेतू क्यूनालफॉस 25 ई.सी. का 1–1.25 ली. प्रति हैक्टेयर तथा मेलाथियान (50 ईसी), 1.5 प्रतिशत पर लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- माहूँ/चेंपाः– इस कीट के नीम्फ तथा प्रौढ़ दोनों अवस्थाए नुकसान पहुँचाती है। ये पौधे कोमल भागों, पुष्पक्रम आदि में चोंच गढ़ाकर निरन्तर रस चूसते रहते हैं, तथा पौधे पर स्थाई रूप से झुण्डों में चिपकते रहते हैं। इसके नियंत्रण के लिये एम.पी. डस्ट 20–25 कि.ग्रा. भुरके या पानी की सुविधा वाले स्थानों में डाईमिथोएट 875 मि.ली. प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव प्रकोप दिखाई देते ही करें आवश्यकता हो तो छिड़काव पुनः दोहरावें।

फसल की कटाई एवं गहाईः– सरसों की कटाई यथा सम्भव फलियॉ पीली या भूरी पड़ने लगे व परिपक्व अवस्था पर करें इस अवस्था में दाने झड़ने की आशंका एवं नुकसान नहीं होगा। पौधों के पूर्ण रूप से सूखने के पश्चात् बीजों को पौधों से थ्रेसर द्वारा अलग कर लिया जाता है। फिर बीजों को भली भाँति सुखाकर एकदम साफ बोरों में भरकर हवादार स्वच्छ गोदामों में भण्डारित कर लेवें।

अतः सक्षिप्त मे हम यहाँ यह कह सकते है की सरसों का अच्छा उत्पादन लेने के लिये उन्नत किस्मों, अच्छी उर्वारता वाली मिट्टी का चुनाव, बाजोपचार, पोषक तत्व प्रबन्धन, फसल चक्र एवं सिंचाई प्रबन्धन को अपनाकर ही ले सकते है।

❑❑❑

हे जी कोई वोबे तोरिया किसान खेत बीच, कोई वोबे उर्वशी, वरदान किस्म राई है,
कोई करै रोहिणी, आर्शीवाद, कोई करै पूसा मस्टर्ड की बुवाई है।
हे जी कोई-कोई बोय किसान खेत में माया और भवानी रे सरसों की सुनो कहानी रे।।

जैव–प्रौद्योगिकी के द्वारा तिलहन फसलों में तना गलन रोग हेतु प्रतिरोधी शक्ति की अभियांत्रिकी

नवीन चंद्र गुप्ता[1], महेश राव[1], पंकज शर्मा[2]
[1]भा.कृ.अनुप. – राष्ट्रीय जैव–प्रौद्योगिकि संस्थान, पूसा, नई दिल्ली
[2]भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

विश्व की लगातार बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए यह आवश्यक है की खाद्य उत्पादन भी उसी स्तर पर बढ़ता रहे, जिससे लोगों की पोषण आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। फसलीय रोगजनकों के रोकथाम व प्रबंधन के द्वारा खाद्य आपूर्ति को पर्याप्त सीमा तक सुनिश्चित किया जा सकता है। तिलहन फसलों के लिये विकसित की गई पारम्परिक फसल सुधार विधियों में लगने वाले लम्बे समय और अपर्याप्त जीनपूल की उपलब्धता के कारण अब यह विधियां उतनी सक्षम नहीं रह गयी हैं । अतः कृषि प्रौद्योगिकी ने शोधकर्ताओं का ध्यान अपनी और आकर्षित किया है, ताकि कोशिका विज्ञान और आणविक बायोलॉजी की सक्षम और तेज तकनीकी का, फसल सुधार की पारम्परिक तकनीकों के पूरक के रूप में उपयोग किया जा सके, या इन तकनीकों का फसल सुधार की पारम्परिक विधियों के साथ समन्वय किया जा सके। नए आण्विक मार्कर की खोज ने ऐच्छिक गुणों की चयन विधि को तेज और आसान बना दिया है, जिससे पारम्परिक फसल सुधार तकनीकी पहले से अधिक सुदृढ़ बन गई है। सरल व सटीक ट्रांसफॉर्मेशन तकनीकी विकसित हो जाने के कारण अब ट्रांसजेनिक तिलहन फसलों को उत्पन्न करना संभव हो पाया है। तिलहन फसलों का एक अति महत्वपूर्ण फफूंदी कारक रोग, स्क्लेरोटिनिया तना सड़न गलन नाम से जाना जाता है। इसी रोग को उदाहरण के रूप में लेते हुए प्रस्तुत समीक्षा इस तथ्य को विस्तार से प्रस्तुत करेगी की किस प्रकार कृषि जैव–प्रौद्योगिकी किसानों की समस्याओं का प्रभावी समाधान ढूंढ़ने में सक्षम है।

स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोटियोरम जनित तना गलन रोग

स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोटियोरम पिछले 150 वर्षों से भी अधिक समय से खोजा तथा अध्ययन किया गया जीवाणु है। यह एक नेक्रोट्रॉफिक रोगजनक है अर्थात यह अपना भोजन पौधों के सड़े–गले अवशेषों से प्राप्त कर जीवित रहता है। इस जीवाणु की जीवनचक्र की चार अवस्थाएं– *स्केलोरेसिया, एपोथेसिएम,* एस्कोस्पोर तथा माइसीलियम होती हैं। स्क्लेरोशिया, भूमि से विस्फोटित रूप में अंकुरित होकर माइसीलियम को उत्पन्न करते हैं जो संवेदनशील पौधों को संक्रमित कर देते हैं। हाइफा भी पहले भूमि में उपस्थित अजीवित कार्बनिक पदार्थों के ऊपर अंकुरित होती हैं तथा इस प्रकार मध्य कड़ी के रूप में माइसीलियम उत्पन्न करके उसके द्वारा संक्रमण फैलाती है। इसके अतिरिक्त स्क्लेरोशिया अंकुरित होकर बढ़ते हैं तथा एपोथेसिया उत्पन्न करते हैं जो बाद में एस्कोस्पोर उत्पन्न कर उन्हें वायु में वितरित कर देते हैं। एस्कोस्पोर, अति सूक्ष्म व हल्के होने के कारण दूर तक चले जाते हैं तथा पौधों के निर्जीव भागों के सम्पर्क में आने के बाद अंकुरित होकर फैल जाते हैं और पौधों के स्वस्थ्य भागों में तेजी से संक्रमण फैलाते हैं। एस्कोस्पोर, पौधों के सजीव भागों के सम्पर्क में आने के पश्चात सीधे–सीधे संक्रमण फैलाने में भी पूर्ण सक्षम होते हैं। केवल सूरजमुखी ही एकमात्र ऐसी फसल है जिसे स्क्लेरोटिनिया दृढ़ता से लगातार केवल जड़ों के द्वारा ही संक्रमित करते आ रहा है। स्क्लेरोटिनिया के जीवाणु तत्पश्चात पौधों की कोशिकाओं व उत्तकों पर अपना विस्तार करते हैं तथा अधिक मात्रा में स्क्लेरोशिया उत्पन्न करते हैं जिन्हें रोगग्रस्त सूखे पौधों की जड़ों और तनों के पिथ पर आसानी से देखा जा सकता है (चित्र 1)। स्क्लेरोटिनिया रोग के जीवाणु इस प्रकार अपनी शीतऋतु को स्क्लेरोशिया के रूप में मिट्टी और पौधे के अवशेषों के भीतर व्यतीत करते हैं।

ऑक्सालिक अम्ल–मुख्य पादप अविषालु तथा रोग कारक– रोगाणु रोगग्रस्त स्थान पर एक प्रकार का द्रव्य उत्पन्न करता है। इस द्रव्य के अणु तथा पौध–उत्तकों के मध्य आण्विक स्तर पर जटिल एवं गहन सांकेतिक सूचना का आदान प्रदान होता है जो रोग के स्थापित होने को सुनिश्चित करता है। *स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोटिओरम,* ऑक्सालिकएसिड की मिली– मोलर सांद्रता का निर्माण करता है तथा संक्रमित उत्तकों पर इसे छोड़ देता है। सूरजमुखी में यह अम्ल गतिशील विष के रूप में कार्य करते हुए पौधे को सुखा देता है। ऑक्सालिक एसिड उत्तकों को न केवल अम्लीय बना देता है अपितु यह कोशिकाओं की भित्ति से आयन निकालकर ग्रहण क्षमबलाघादित उत्तकों एवं तंतुओं को रोग जीवाणु के अवकर्षक एन्जाइम्स के समक्ष खुला छोड़ देता है। ऑक्सालिकएसिड, डाईफिनॉलऑक्सिडेज की सक्रियता को भी समाप्त कर देता है जिससे ऑक्सीडेटि वबर्स्ट दब जाता है। सुई द्वारा ऑक्सालेट का संक्रमण करने से पौधों में स्क्लेरोटिनया रोग के लक्षण उभर आते हैं। *स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोटिओरम* के उत्परिवर्ती (म्युटेंट), जिनमें ओक्सालेट बनाने की क्षमता नहीं होती है, रोग जनक नहीं होते हैं जबकि वह प्रत्यावर्तित विवति जो ऑक्सालेट निर्माण करने की क्षमता को हासिल कर लेती है, संक्रमण फैलाने में पूर्ण सक्षम होती है। यह आंकड़े साफ–साफ दर्शाते हैं कि ऑक्सालिक अम्ल ही

रोगकारक तत्व है। यह पौधे की अतिसंवेदनशील अनुक्रिया को दबा देता है।

स्क्लेरोटिनिया तना गलन रोग प्रबंधन–

स्क्लेरोटिनिया तना गलन रोग प्रबंधन के लिए पारम्परिक पौध प्रजनन विधि के साथ–साथ रसायनों का प्रयोग दोनों ही रणनीतियां उपयोग में लाई जाती हैं। अनुवांशिकी अध्ययन ने स्पष्ट कर दिया है की स्क्लेरोटिनिया रोग एक मात्रात्मक गुण है और बहुत सारे जींस मिलकर प्रतिरोधी क्षमता का विकास करते हैं। इस रोग के प्रति प्रतिरोधक स्रोत उपलब्ध हैं, जिनको पादप प्रजनक उपयोग में ला रहे हैं। परंतु इस रोग का प्रभावी इलाज तो यही है की संक्रमित भूमि पर फसल कौनसी लगायी जाये और भूमि पर इस रोग के संक्रमण को हर प्रकार से रोका जाये। अनेक प्रकार के रसायनों का उपयोग इस रोग के रोकथाम के लिए किया गया है परन्तु यह काफी महंगे हैं और प्रायः उतने प्रभावी नहीं हैं, या वातावरण की दृष्टि से असुरक्षित हैं। इसलिए किसानों ने इस रोग के निवारण हेतु नए दृष्टि कोणों की मांग की है। फसलों का पराजीनी बदलाव (ट्रांसजेनिक मॉडिफिकेशन) एक ऐसी तकनीक है जिससे स्क्लेरटोरिया रोग के रोकथाम में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की जा सकती है। पराजीनी रणनीतियों के अंतर्गत रोगाणु के रोग कारक तत्व का निराविशिकरण करना, पौधों के अंतर्जात सुरक्षा प्रणाली को सक्रिय करना तथा कवक विरोधी प्रोटीन्स द्वारा स्क्लेरोटिनिया के विकास को रोकना सम्मिलित हैं।

ओक्सालेट ऑक्सिडेज द्वारा स्क्लेरोटिनिया प्रतिरोधी क्षमता का विकास

स्क्लेरोटिनिया कवक से मुकाबला करने की एक सामान्य प्रक्रिया यह है की स्क्लेरोटिनिया रोगाणु द्वारा छोड़े गए स्राव, ऑक्सालिकएसिड जो कि एक रोग कारक तत्व एवं पौधों के लिए विष है का विघटन किया जाये तीन प्रकार के एंजाइम – ऑक्सलेट ऑक्सिडेज (EC 1.2-3.4), ऑक्सलेट डिकार्बोक्सिलेज (EC 4.1–1.2) तथा ओक्सालिल–CoA कार्बोक्सीलेज (EC 4.1–1.8) ऐसे एंजाइम हैं जो ऑक्सालिक अम्ल को विघटित कर सकते हैं। बैक्टीरियल ओक्सालिल–CoA कार्बोक्सीलेज जीन, के प्रयोग से पौधों को इस प्रकार इंजीनियरिंग की जा सकती है कि वे ऑक्सलेट को उत्प्रेरित करके उनमें स्क्लेरोटिनिया के प्रति प्रतिरोधकता उत्पन्न करें, यद्यपि दोनों बैक्टीरियल तथा फंगल ऑक्सीलेट डिकार्बोक्सिलेजेज, ऑक्सलेट को CO_2, तथा फॉर्मिक अम्ल में बदल देते हैं जो पौधों के लिए विष कारक होते हैं। इसलिए वैज्ञानिकों की अधिक रुचि OXO की तरफ है जो O_2 और OA का विघटन H_2O_2 तथा CO_2 में करता है जो विष कारक नहीं होते। इस एन्जाइम को सर्वप्रथम जौ तथा गेहूं में खोजा गया एवं तत्पश्चात इस एन्जाइम का निर्स्पण भी किया गया। गेहूं के OXO को' जर्मिन' के नाम से भी जाना जाता है और यह कुपिन परिवार का वह एन्जाइम है जिसका निर्स्पण सर्वाधिक एवं विस्तार से किया गया है। गेहूं का जर्मिन एप्लास्टिक (aplastic – अर्थात जो किसी अन्य रूप में परिवर्तित न हो), मल्टीमेरिक (multimeric – अर्थात ऐसा प्रोटीन जो एक से अधिक एक ही प्रकार या विभिन्न प्रकार के पॉलीपेप्टाइड्स चेन द्वारा निर्मित हो) और ग्लायकोसाइलेटेड (glycosylated) गुणों को धारण करने वाला ऐसा एन्जाइम है जो तापमान, प्रोटीएज (protease) तथा H_2O_2 द्वारा विघटित नहीं होता है। एक बीज पत्रीय तथा द्विबीज पत्रीय अनेक उच्च स्तरीय पौधों से जर्मिन प्रकार के प्रोटीन (GLPs & germin like proteins) पृथक किए जा चुके हैं जिनकी सीक्वेंस आइडेंटिटी (sequence identity) गेहूं के जर्मिन से मेल खाती है। हालाँकि अभी तक केवल गेहूं, जौ, मक्का, जई, धान, राई, और चीड़ के जर्मिन में ही OXA की सक्रियता को देखा गया है।

इस दिशा में वैज्ञानिकों ने गेहूं के OXA जीन (gf–2.8) को एग्रोबेक्टीरियम के माध्यम से सोयबीन में स्थापित करके ट्रांसजेनिक सोयबीन का निर्माण किया और पाया कि '३५–S–gf–२.८' की होमोजाइगस अवस्था वाले ट्रांसजेनिक सोयाबीन ने OXO की सक्रियता वाले 130 KDa आकार का प्रोटीन उत्पन्न किया। इस OXO की सक्रियता अधिकांशतः कोशिकाओं की भित्तियों में पाई गई जहाँ रोगजीवाणु अधिक आक्रामक होते हैं। *स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोटोरियम* का संक्रमण ट्रांसजेनिक सोयबीन के तने और बीज पत्र पर कराने पर पाया गया की सोयबीन में रोग फैलाव के स्तर में काफी कमी आ गई, तथा रोग से उभरे घाव का आकार भी छोटा हो गया। यह इस बात को दर्शाता है की OXO, तना गलन के प्रति प्रतिरोधक क्षमता को उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त, खेत पर OXO –ट्रांसजेनिक सोयबीन का स्क्लेरोटिनिया जीवाणु के प्रति अनुक्रिया को चिह्नित किया तथा ट्रांसजेनिक सोयबीन के शाश्कीय अनुक्रिया का असंक्रमित भूमि पर अध्ययन किया गया। भिन्न–भिन्न तीन स्थानों पर किए गए तीन वर्षों के जैव आमापन अध्यन के आधार पर यह तथ्य सामने आया की व। –संचित (ट्रांसजेनिक) सोयाबीन स्क्लेरोटिनिया के प्रति अत्यधिक प्रतिरोधी थी। जबकि असंक्रमित भूमि पर किए गए अध्ययन के अनुसार संचित तथा गैर संचित पैतृक लाइन मे बीज उत्पादन, फसल परिपक्वता, बीज भार/आकार, बीजप्रोटीन, तथा तेलांश के प्रति कोई मुख्य अंतर नहीं पाया गया। कुछ और अध्ययन के अनुसार भी OXO – द्वारा उत्पन्न प्रतिरोधकता, किसी सर्वोत्तम व्यावसायिक किस्म का ग्रहणक्षम पृष्ठभूमि में होने के तुल्य है। एग्रोबेक्टेरियम माध्यम से OXO–संचित सूर्यमुखी का भी विकस किया गया है। स्क्लेरोटिनिया का पत्तियों पर संक्रमण कराने पर पाया गया की, संचित पौधों की पत्तियों पर संक्रमण द्वारा उत्पन्न घाव का आकार, परखी (control) की तुलना में काफी कम था पत्तियों के डंठल पर

संक्रमण करने पर पाया गया की परखी में यह संक्रमण डंठल से तने तक फैल गया, जबकि संचित पौधों में यह संक्रमण डंठल तक ही सीमित रहा। दस दिनों के पश्चात संक्रमण द्वारा किए गए घाव का आकार संचित पौधों में परखी पौधों की तुलना में छःगुना कम था, और दो सप्ताह के पश्चात पाया गया की, असंचित परखी पौधों में संक्रमण, पौधों के शीर्ष तक पहुँच गया जबकि इसकी तुलना में संचित पौधों में संक्रमण डंठल से तने तक ही पहुँच पाया। यह अनुसंधान इस बात की पुष्टि करता है की, OXO संचित सोयबीन में स्क्लेरोटिनिया के प्रति प्रतिरोधकता उत्पन्न करता है I ग्रीन हाउस और तना इनोक्यूलेशन परख ने यह भी दर्शाया की OXO ट्रांसजेनिक पौधों में तना गलन, जड़ गलन तथा शीर्ष गलन के प्रति भी प्रतिरोधक क्षमता में बढोत्तरी हुई है। OXO–संचित पौधों का संयोजन जब प्राकृतिक रूप से स्क्लेरोटिनिया रोधक पौधों से कराया गया तो प्राप्त OXO–ट्रांसजीन वाले संकर पौधे असंचित आइसोजेनिक संकर पौधो की तुलना में अधिक स्क्लेरोटिनिया रोधक पाए गए। उपरोक्त अध्ययनों से ये पता चलता है की ट्रांसजीन के समावेश द्वारा स्क्लेरोटिनिया के प्रति उच्यस्तर की प्राकृतिक रोधकता तथा प्रतिरोधक क्षमता प्राप्त की जा सकती है जौ–OXO संचित सरसों में OXO की उच्यस्तर की गतिविधि पाई गई। ऐसे पौधों में बाहर से OA प्रवेश कराने पर, उन्हें OA के प्रति सहिष्णु पाया गया। संचित पॉपलर में गेहूं–जर्मिन की अधिभावाकृति पाई गई, जिसके परिणामस्वरुप उसमें OA उत्पन्न करने वाले रोगाणु से प्टोरियाम्यूसिवा के प्रति प्रतिरोधकता बढ़ गई। सबसे रोचक उजागर तथ्य तो यह है कि OXO–संचित मक्का में भी कीटों के प्रति प्रतिरोधक्ता पाई गई। यह सारे परिणाम इस ओर इशारा करते हैं की H_2O_2 उत्पन्न करने वाले OXO जैसे एन्जाइम की असीम उपयोगिता है तथा इसके उपयोग से पौधों को अनेक प्रकार के रोगों तथा कीटों के प्रति उच्च प्रतिरोधकता की क्षमता को समावेशित किया जा सकताहै।

OXO द्वारा पौधों में सुरक्षा प्रतिक्रिया का प्रेरित होना

जर्मिन प्रकार के प्रोटीन (GLPs) अतिसंरक्षित समूह है। इन पर किए गए अनेक अध्ययन इस बात को दर्शाते हैं की इनका पौधों की बढोत्तरी एवं विकास तथा जीवीय और अजीवीय तनाव के प्रति प्रतिक्रिया उत्पन्न करने में बड़ी भूमिका होती है। उदाहरण के लिए गेहूं और जौ में उपस्थित जर्मिन, बीज अंकुरण के समय तथा बाद में वयस्क पत्तियों में रोग लगने पर तीव्र रूप से अभिव्यक्त होता है। चूर्ण फफूंदी संक्रमण का जौ की पत्तियों पर प्रवेश कराने पर पाया गया की छः घंटे पश्चात उसकी मिजोफिल कोशिकाओं में एक विशेष प्रकार का रोगाणु–प्रतिक्रियात्मक आक्सो ट्रांसक्रिप्ट पाया गया। हाल ही में यह भी पाया गया है की जौ जर्मिन तथा सम्बंधित जीएलपीएस एक विशेष प्रकार के वाह्य कोशिकीय मैंगनीज रहित एन्जाइम का प्रतिनिधित्व करते हैं जो OXO तथा सुपर ओक्साईडडिसम्युटेज (SOD) की प्रतिक्रिया को प्रदर्शित करते दो GLPs ऐसे हैं, जिनकी SOD के रूप में पहचान कर ली गई है परन्तु उनमें OXO की कोई गतिविधि नहीं पाई गई। सुपरओक्साईडडिसम्युटेज (SOD) गतिविधि, H_2O_2 उत्पन्न करने में भी अग्रणी पाया गया है पर स्क्लेरोटिनिया रोग से लड़ने में OXO की दोहरी भूमिका है। एक तरफ तो वह स्क्लेरोटिनिया विष को निष्क्रिय करता है तथा दूसरी तरफ वह पौधे में H_2O_2 के रूप में सुरक्षा प्रेरित अणु उत्पन्न करता है। सूर्य मुखी में जर्मिन प्रकार की OXO गतिविधि बहुत कम मात्रा में होती है अतः उसमें OA उत्पन्न करने वाले स्क्लेरोटिनिया रोगाणु भी अधिक मात्रा में लगते हैं और इसलिए सूर्यमुखी पौधों तथा रोगाणु के मध्य होने वाली आक्सो एंजाइम प्रेरित क्रिया–प्रतिक्रिया के वैज्ञानिक महत्व को समझने के लिए अति उपयोगी हो सकती है। वैज्ञानिकों ने ये देखा है कि पराजीनी सूर्यमुखी की पत्तियों की कोशिकाएं ओक्सो का विघटन तथा H_2O_2 को उत्पन्न करती हैं। पराजीनी सूर्यमुखी की पत्तियां में अति संवेदनशील प्रतिक्रिया (हाईपरसेंसिटिव रेस्पोंस) जैसे की विक्षति अनुकरण उत्पन्न होती है जो H_2O_2, OXO, सैलिसिलिक एसिड तथा रक्षक जीनो की अभिव्यक्ति के उच्च स्तर को बनाये रखता है। जिन पराजीनी पौधों में OXO का स्तर कम होने के वावजूद पत्तियों पर घाव भी नहीं थे, उन पौधों में भी रक्षक जीन की अभिव्यक्ति स्तर अधिक पाया गया जिससे यह प्रतीत होता है की रक्षक जीनो की सक्रियता कोशिकीय मृत्यु जैसे अतिसंवेदनशील प्रतिक्रिया (HR) पर निर्भर नहीं करता है I mRNA परिच्छेदिकायन (प्रोफाइलिंग) से ये ज्ञात हुआ कि ओक्सो–संचित सूर्यमुखी में अनेक प्रकार के जीन विभिन्न प्रकार से व्यक्त होते हैं जिनमें से तीन रक्षक प्रोटीनजीन पीआर5, सूर्यमुखी कार्बोहाइड्रेट्स ऑक्सिडेज, और डिफेंसिन का निर्स्पण किया जा चुका है। असंक्रमित ओक्सो–संचित पत्तियों में इन जीनों की अभिव्यक्ति नाटकीय ढंग से बढी हुई पाई गई जोए SA तथा H_2O_2 की ओक्सो द्वारा उत्पन्न H_2O_2 पौधों के आंतरिक तत्वों (एन्डोजीनससब्सट्रेट) के साथ सीधे तौर पर या SA के द्वारा या जस्मोनिकएसीड (JA) के द्वारा क्रिया करके रक्षक जीनो की सक्रियता को उत्प्रेरित कर देता है। यह दर्शाया जा चुका है की, PR5 प्रकार के प्रोटीन्स में अनेक प्रकार की फफूंदी, जैसे *फाइटोफथोरा इन्फेसटेन्स, कैंडिडा अल्बीकन्स, न्यूरोस्पोरा क्रासा* और *ट्राइकोडर्मा रिसि* आदि, के प्रति पात्रे (इन विट्रो) अवस्था के अंतर्गत कवक विरोधी क्रिया पाई गई है। पौधों के डेफेंसीन अनेक प्रकार की फफूंदी की संवृद्धि को बाधित कर देते हैं। ऐसा करने के लिए या तो यह फफूंदी की हाइफे की लम्बाई को बढ़ने से रोकते हैं या फिर हाइफा के विस्तार को रोककर ऐसा करते हैं। सूर्य मुखी के कार्बोहाइड्रेट

ऑक्सिडेज (SCO) की समानता एक ऐसे सूचित SCO के साथ पाई गई है जिसमें कवक विरोधी गतिविधि है तथा यह संचित अरेबिडोप्सिस में रोगाणु के प्रति प्रतिरोधकता को भी अभिव्यक्त करता है। सूर्यमुखी के कार्बोहाइड्रेट ऑक्सिडेज की समानता बर्बेराइन ब्रिजएन्जाइम के साथ भी पाई गई है जो बेंजोफिनांथ्रिडीन अल्कलॉइड मार्ग का एक मुख्य एन्जाइम है और खसखस (Poppies) में कवक विरोधी रसायन उत्पन्न करता है। बर्बेराइनब्रिज एन्जाइम तथा कार्बोहैड्रेट ऑक्सिडेस दोनों ही H_2O_2 उत्पन्न कर सकते हैं, जो दर्शाता है की OXO–प्रेरित SCO, H_2O_2 के स्तर को OXO संचित पत्तियों में और अधिक बढा सकता है। यद्यपि, अल्कलॉइड बायोसिनथेटिक पाथवे, सूर्यमुखी के पौधों में न भी पाया जाता हो फिर भी कार्बोहाइड्रेट ऑक्सिडेज की कवक विरोधी गतिविधि दर्शाती है की सूर्यमुखी की सुरक्षा प्रणाली के लिए यह महत्वपूर्ण है। आंतरिक रूप से निर्मित ओक्सो स्क्लेरोटिनिया के प्रति जिस प्रकार की प्रतिरोधकता को उत्पन्न करता है वह अनेक प्रकार की क्रियाओं के परिणाम स्वरूप होता है। यह पौधे के अंदर होने वाले आन्तरिक तत्त्व की चयापचय (मेटाबोलिज्म) के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले H_2O_2 के कारण होता है जो रोगाणु के प्रतिरक्षक जीनो की अभिव्यक्ति को बढा देता है। स्क्लेरोटिनिया द्वारा निर्मित ओए का विघटन होने से इसके द्वारा किए जाने वाली क्षति कम हो जाती है तथा रोग के विस्तार में कमी आ जाती है। इन अध्ययनों से ये पता चलता है कि अंतर्निर्मित ओक्सो अन्य ओए उत्पन्न करने वाले जीवाणु जैसे–क्रिस्टूलेरीला पिरामिडेलिस और सेप्टोरियामुसिवा के प्रति भी प्रतिरोधी क्षमता को उत्पन्न कर सकता है। उपरोक्त शोध कार्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि H_2O_2 उत्पन्न करने वाले OXO प्रकार के एन्जाइम के उपयोग से पौधों को इस प्रकार से इंजीनियर किया जा सकता है कि उनमें अनेक प्रकार के जीवाणु के प्रति प्रतिरोधी क्षमता को उत्पन्न किया जा सकता है। H_2O_2 के रोग प्रतिरोधी गुणों ने आण्विक रोग विज्ञानियों का ध्यान अपनी ओर कुछ इस प्रकार आकर्षित किया है की H_2O_2 उत्पन्न करने वाले एन्जाइम्स जैसे ग्लूकोज ऑक्सिडेज की अधिक अभिव्यक्ति के द्वारा H_2O_2 के स्तर को मैनिपुलेट कर सकते हैं।

कवक विरोधी प्रोटीन उपागम

पौधे रोग विरोधी पेप्टाइड्स या प्रोटीन की अति अभिव्यक्ति की रणनीति को अपनाते हुए अपने आप को बैक्टीरिया या कवक रोगाणु से सुरक्षित रखती हैं। अनेक प्रकार के जीवाणु विरोधी पेप्टाइड्स में इस प्रकार की प्रवृर्ति दिखाई देती है। वैज्ञानिकों ने अनेक जीवाणु विरोधी पेप्टाइड्स का अध्यन सूर्यमुखी की कोशिकाओं में यह जानने के लिए किया है की उनका स्क्लेरोटिनिया विरोधी व्यवहार उसकी स्थिरता एवं विषैलापन किस प्रकार प्रदर्शित होता है। इन पेप्टाइड्स में से टेकिप्लेसिन (Tachyplesin-TP) सबसे उत्तम पाया गया पटेकिप्लिसिन (TP) एक शक्तिशाली जीवाणु विरोधी पेप्टाइड है जिसे होर्सशुक्रेब (Tachypleus tridentatum) के हीमोसाइट्स (hemocytes) से पृथक किया गया है। पिछले अध्ययनों से पता चलता है कि 17-residue पेप्टाइड् में एक इन्ट्रिंसिक एम्फीपैथीक स्ट्रक्चर है जो दो anti parallel beta sheets को डाइसल्फाइड से कसकर बांधने के कारण प्राप्त होता है। प्राकृतिक और कृत्रिम कोशिका भित्तियों तथा प्रमाणित मापों पर आधारित सक्रियता आमापन विधियां दर्शाती हैं की पेप्टाइड स्ट्रक्चर पर एमिनो एसिड साइड चेन के गुणों तथा भिन्नता का अधिक प्रभाव पड़ता है। TP, एक निश्चित सांद्रता पर स्क्लेरोटिनिया एस्कोस्पोर्स के जमाव को पूर्णतः रोक देता है। इस सांद्रता का विषैला प्रभाव सूर्यमुखी के कोशिका द्रव्य (प्रोटोप्लास्ट) पर केवल अतिसाधारण सा होता है। यह ध्यान देने योग्य है की TP जड़, पत्ती, तथा फूलों के अंतर्कोशिकीय द्रव्य में स्थायी रूप से संघठित रहता है। TP–संचित सूर्यमुखी के कैलस में स्केलेरोटिनिया माइसीलियम के विकास में बाधा पाई गई। इन परिणामों से यह निष्कर्ष निकलता है की TP एक शक्तिशाली स्क्लेरोटिनिया विरोधी पेप्टाइड है जिसे इंजीनियर करके तिलहन फसलों में स्क्लेरोटिनिया के प्रति प्रतिरोधकता लाई जा सकती है। इसके अलावा वैज्ञानिकों ने राई (*ब्रेसिका नेपस* CV- ओलिफेरा) में एग्रोबेक्टीरियम माध्यम से एक हाइब्रिड इंडोकाइटिनेज जीन को कंस्टिट्यूटिव प्रमोटर के आधीन प्रवेश करा कर रचनान्तरित पौधों से प्राप्त संतति को तीन भिन्न–भिन्न प्रकार के कवक रोगाणु (*सिलेण्डरोस्पोरियम कहन्सेंट्रिकम, लेप्टोसफेरिया मकुलंस,* और *स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोटियरम*) के विपरीत दो भिन्न–भिन्न भौगोलिक स्थानों पर परखा गया। इन पौधों ने असंचित पैतृक पौधों की तुलना में रोगों के प्रति अधिक प्रतिरोधकता दिखलाई। काइटिनेज जीन का ओवर एक्सप्रेशन कई अन्य रोगाणुओं के प्रति भी शोधित प्रतिरोधकता प्रदर्शन किया। पौधों में रोग प्रतिरोधकता उत्पन्न करने में फिनॉलिक्स की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वैज्ञानिकों ने शीर्षगलन कारक *स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोटियरम* के प्रति विभिन्न स्तर (अत्यंत ग्रहण क्षमता से अति प्रतिरोधक तक) की प्रतिरोधकता प्रदर्शित करने वाली चार सूर्यमुखी किस्मों में रोगलक्षण तथा कुल घुलनशील फिनोलिक मात्रा का परस्पर विश्लेषण किया। उन्होंने पाया की पौधों में फिनोलिक कंपाउंड की उपलब्ध मात्रा सूर्यमुखी की किस्म रोग लगने का समय तथा पौध उत्तको की प्रकृति पर निर्भर करती है। फिनॉलिक्स की मात्रा और फिनाइल एलनाइन अमोनिआलाईएज की सक्रियता सबसे अधिक रोग प्रतिरोधक किस्म में पाई गई। यह अंतर रोग की उपस्थिति या अनुपस्थिति से भी मेल खाते थे। अतः इन अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि तेलीय फसलों में फिनॉलिक्स कम्पाउंड के स्तर की तालमेल से स्क्लेरोटिनिया

के प्रति प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाया जा सकता है ।

OXO–संचित फसलों की जैव सुरक्षा

जैव प्रौद्योगिकी ने आण्विक प्रजनन के माध्यम से फसलों की कई उन्नत, विशेषकर उत्तमगुण तथा कीट प्रतिरोधकता वाली किस्मों को जन्म दिया। पहली पराजीनी किस्म सर्व प्रथम सन् 1966 में सामने आई। वर्तमान में अमरीका में पराजीनी मक्का, सोयबीन, और कपास कुल उपलब्ध क्षेत्र के आधे क्षेत्र में उपजाई जा रही है। अपर्याप्त ज्ञान के कारण लोग इनके सेवन से कतरा रहे हैं। सूर्यमुखी के संदर्भ में ऐसा संशय भी है की पराजीन द्वारा इनकी जंगली जातियाँ स्थानांतरित हो सकती है। वैज्ञानिकों ने सूर्यमुखी में स्क्लेरोटिनिया के प्रति प्रतिरोधकता व्यक्त करने वाले पराजीन का अध्ययन किया। एक प्रकार के OXO–पराजीन को जंगली सूर्यमुखी के साथ बैक क्रॉस कराया गया तथा प्राप्त पौधों को इंडियाना, नार्थडकोटा एवं केलिफोर्निया के फील्डसाइट्स में अवरोधित पिजड़ों में उगाया गया। OXO–पराजीन की उपस्थिति के कारण स्क्लेरोटिनिया के प्रति प्रतिरोधकता स्पष्ट दिखाई पड़ी तथा इसकी वजह से बीज उत्पादन मात्रा में किसी प्रकार की कमी भी नहीं पाई गई। उन्होंने दिखलाया की पराजीन का जंगली जातियों में क्रियान्यवित रूप से सुनिश्चित बने रहना केवल इस बात पर ही निर्भर नहीं करता की पराजीन स्थानांतरित हो चुका है बल्कि इस बात पर भी निर्भर करता है की उसकी नए होस्ट पोपुलेशन की पृष्ठभूमि में स्थानांतरण के कारण कथित जंगली जाति की रिलेटिव फिटनेस पर क्या असर पड़ा है। इस प्रकार के अध्ययन इन नई तकनीकी की सुरक्षा प्रणाली को सिद्ध करने के लिए महत्वपूर्ण है।

चित्र 1: भारत में *स्क्लेरोटिनिया स्केलेरोटीयमोरम* जनित तना गलन रोग से प्रभावित होने वले विभिन्न राज्यों का मानचित्रन (अ), एवम् रोगजनक *एस. स्क्लेरोटियोरम* और तना गलन रोग से पीड़ित भारतीय सरसों के फसल की छवियां (ब)।

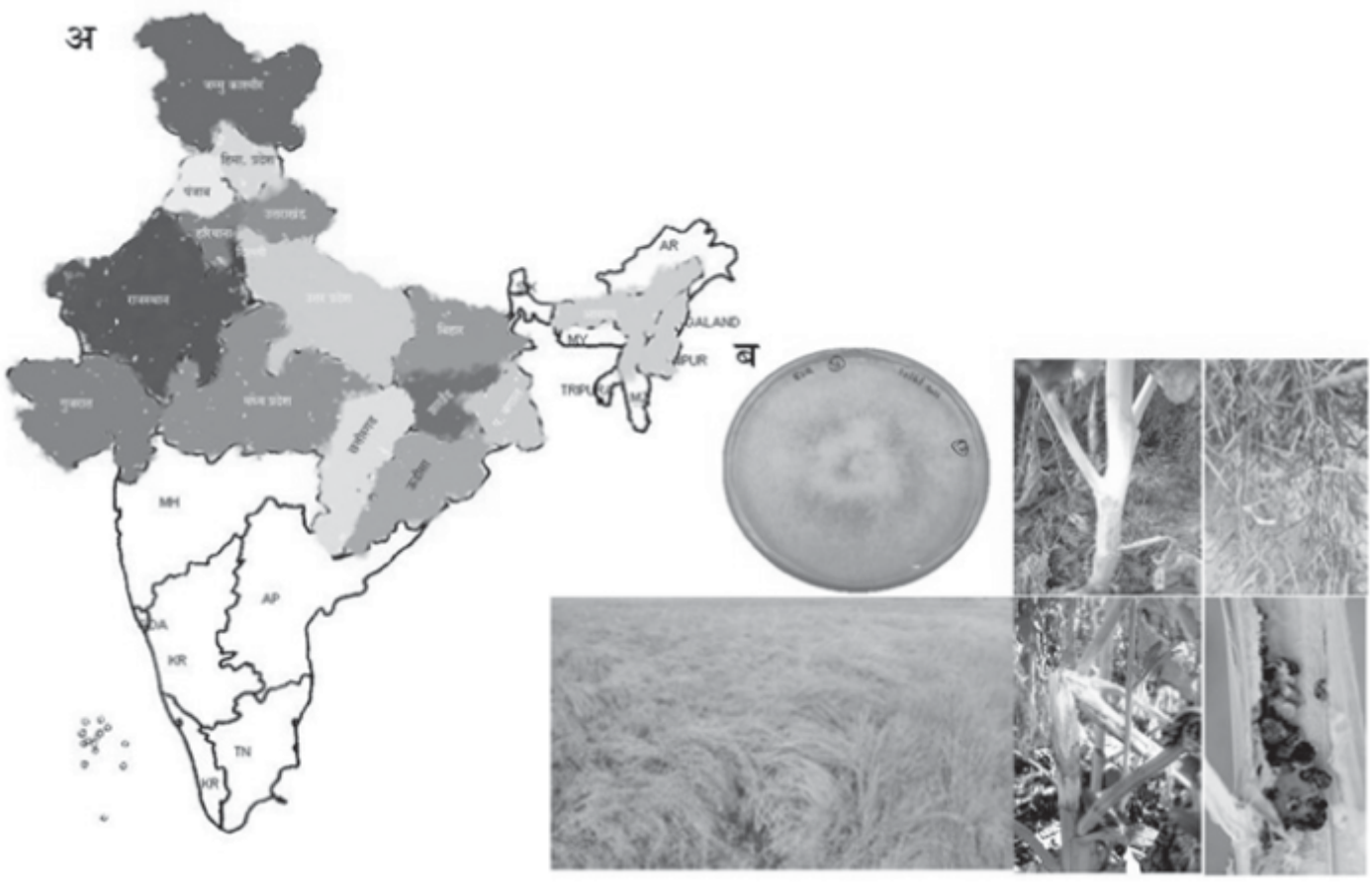

❑❑❑

सरसों उत्पादन में जैव प्रौधौगिकी का महत्व

प्रशान्त यादव[1], अनुराग मिश्रा[2], अरुण कुमार[1]
[1]भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)
[2]भा.कृ.अनुप.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत एक कृषि प्रधान देश है और हमारे देश की लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं पशुपालन से जुड़ी हुई है। वैज्ञानिकों के द्वारा किए गये अनुसंधान एवं किसानों की मेहनत के कारण आज हमारा देश खाधान्न के क्षेत्र में लगभग आत्मनिर्भर है, किन्तु दलहन और विशेष रुप से तिलहनी फसलों के लिए भारत आज भी अन्य देशों पर निर्भर है। इसके मुख्य कारण है– तिलहनी फसलों के क्षेत्रफल में वृद्वि न होना, उन्नत प्रजातियों का उनकी क्षमतानुसार उत्पादन न होना एवं विभिन्न प्रकार के जैविक और अजैविक कारकों द्वारा होने वाला नुकसान।

हमारे देश में मुख्य रुप से सात तिलहनी फसलें उगाई जाती हैं, जैसे–राई–सरसों, सोयाबीन, मूंगफली, सूरजमुखी, तिल, अलसी एवं रामतिल। इनमें राई–सरसों, सोयाबीन और मूंगफली सबसे महत्वपूर्ण तिलहनी फसलें हैं जिनका कुल तिलहन उत्पादन में लगभग 88 प्रतिशत योगदान है। सोयाबीन सबसे ज्यादा क्षेत्रफल पर उगाई जाने वाली तिलहनी फसल है, और इसके बाद सरसों और मूंगफली का स्थान आता है। सरसों मुख्य रुप से उत्तर भारत में उगाई जाती है, और देश में सरसों का सबसे ज्यादा उत्पादन करने वाला राज्य राजस्थान है। उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, उत्तराखण्ड, बिहार एवं पश्चिम बंगाल सरसों उगाने वाले अन्य प्रमुख राज्य हैं। खाद्य तेलों के लिए राई–सरसों एक बहुत ही महत्वपूर्ण फसल है। इसका तेल बेहद स्वादिष्ट और पौष्टिक होता है तथा इसके तेल में औषधिय गुण भी पाये जाते हैं।

हमारे देश में वर्ष 2017 में राई–सरसों की फसल कुल 60 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में बोई गयी थी जिससे कुल 79 लाख टन सरसों का उत्पादन हुआ था। भारत में सरसों की औसत उत्पादकता लगभग 1319 किग्रा/हेक्टेयर की है। इसके बावजूद वर्ष 2018 में भारत को लगभग 145 लाख टन खाद्य तेलों का आयात करना पड़ा था, जो कि हमारी कुल घरेलु खपत का आधा हिस्सा है। इसके साथ ही खाद्य तेलों की मांग प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है, और वर्ष 2027 तक भारत में खाद्य तेलों की मांग बढकर 24 किग्रा/व्यक्ति/वर्ष होने का अनुमान है। इन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राई–सरसों की पैदावार बढ़ाना भारत के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इसके लागत/लाभ के बेहतर अनुपात को देखते हुए किसानों की आमदनी बढ़ाने में भी राई–सरसों फसल अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगी ।

अन्य फसलों के मुकाबले सरसों का पौधा विभिन्न प्रकार के वातावरण में अच्छी तरह ढल जाता है। फिर भी, प्रतिकूल परिस्थियों जैसे सूखा, उसर भूमि एंव रोगों व कीटों के प्रकोप के कारण इसकी पैदावार में काफी कमी आती है। इन जैविक व अजैविक कारकों के प्रति प्रतिरोधी किस्मों का विकास कर सरसों की अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

सरसों को प्रभावित करने वाले अजैविक कारक है– अधिक ताप (अंकुरण के समय और दानों के पकने के समय), पाला, सूखा एंव मृदा की क्षारीयता।

सरसों को प्रभावित करने वाले जैविक कारक है– पादप रोग {अल्टरनेरिया झुलसा, (*अल्टरनेरिया बैसिकी*), सफेद रोली, (*अल्ब्यूगो कैंडिडा*), तना गलन (*स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोसियोरम*) आदि}, कीट {चेंपा, (*लिपैफिस इरीसीमी*), कटा (*बग्राड हिलौरिस*) एंव पर्णखिनक (*क्रोमैटोमिया हार्टिकोला*}।

राई–सरसों की अधिक पैदावार व प्रतिरोधी किस्मों का विकास पिछले 5–6 दशकों में परम्परागत पादप प्रजनन विधियों द्वारा किया जा रहा है। पादप प्रजनन में दो विशिष्ट प्रकार के पौधों में संकरण करा कर नई प्रजातियों का विकास किया जाता है। किन्तु वर्तमान समय में विशिष्ट गुणों वाले जनद्रव्यों का अभाव होने के कारण नई किस्मों का विकास करना अत्यन्त कठिन कार्य हो गया है। परन्तु हमारे वैज्ञानिकों ने जैव प्रौधौगिकी जैसी नई तकनीकी की सहायता से उन्नत किस्मों के विकास को सम्भव बनाया है।

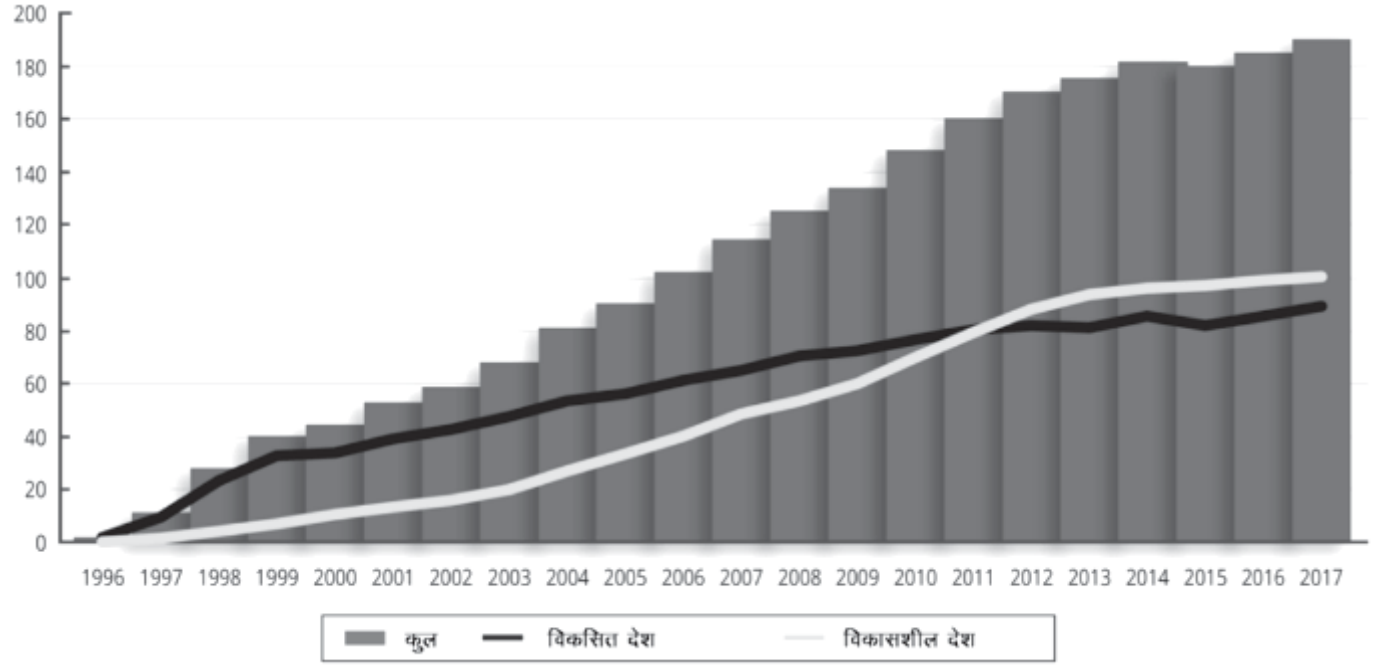

चित्र1: विकसित और विकसशील देशों में जीएम–फसलों का वैश्विक क्षेत्रफल मिलियन हेक्टेयर में (स्रोतः आई.एस.ए.ए.ए. 2017)

जैव प्रौद्यौगीकी को आणविक जीव विज्ञान, पराजीनी तकनीक एंव आनुवंशिक अभियंत्रिकी के नाम से भी जाना जाता है। वस्तुतः किसी भी जीव या जैविक प्रक्रिया का मानव के लाभ के लिए प्रयोग 'जैव प्रौद्यौगीकी' कहलाता है। फसल के सुधार के लिए जैव प्रौद्यौगीकों का दो प्रकार से प्रयोग किया जाता है।

- आणविक चिन्हकों (मालीक्यूलर मार्कर) द्वारा।
- पराजीनी तकनीकी (ट्रांसजेनिक तकनीकी) द्वारा।

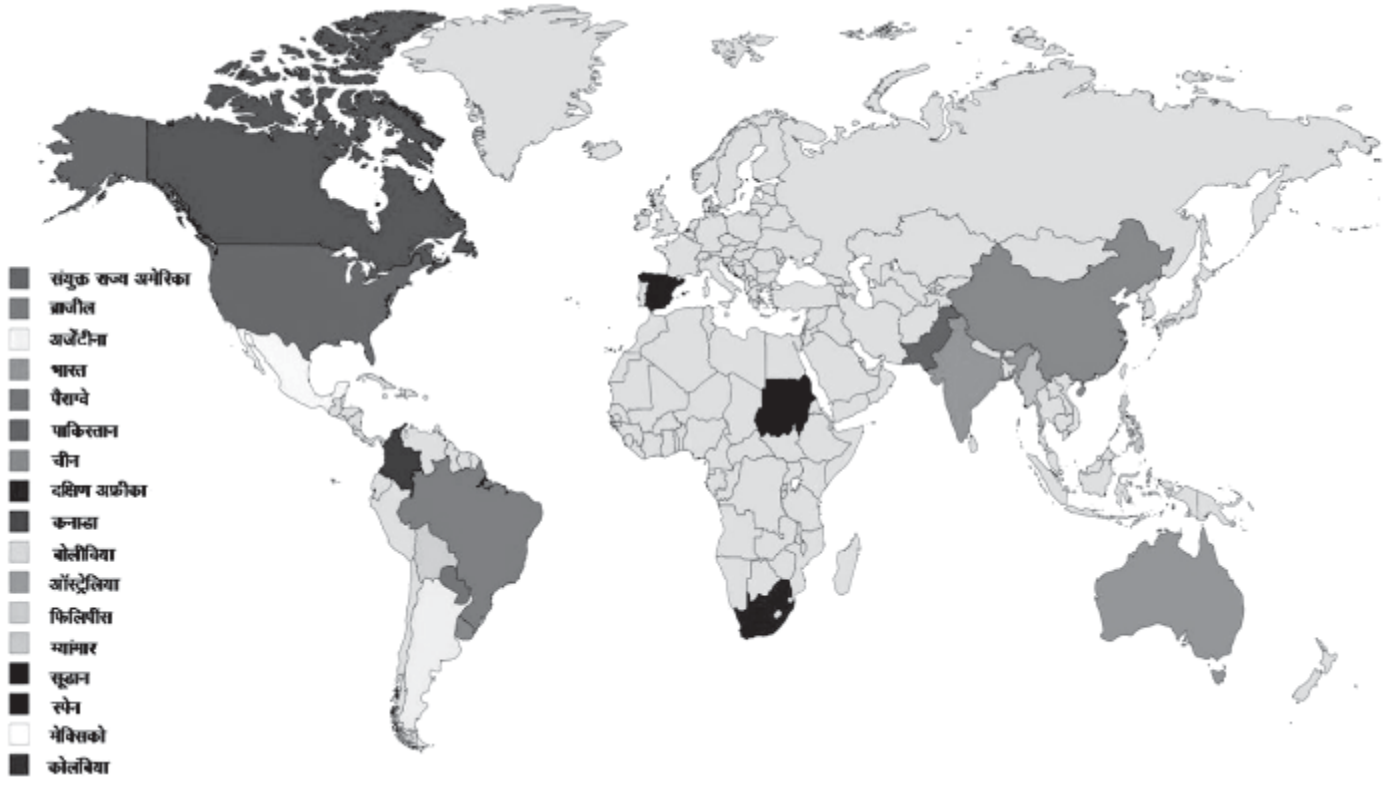

चित्र 2: जीएम–फसलों को ऊगाने वाले विश्व के प्रमुख देश (स्रोतः आई.एस.ए.ए.ए. 2017)

1. आणविक चिन्हकों द्वारा फसल सुधार—आणविक चिन्हक एक तरह के सुक्ष्म निशान होते हैं जो पौधों में उपस्थित विशिष्ट गुणों की पहचान करने में सहायक होते हैं। ये आणविक स्तर के निशान होते हैं और इनकी पहचान प्रयोगशाला में ही की जा सकती है। आणविक चिन्हक मुॅख्य रुप से दो प्रकार के होते हैं, जैव रासायनिक एंव डी.एन.ए. आधारित। जैव रासायनिक चिन्हक मुॅख्य रुप से प्रोटीन से मिलकर बनते हैं और आजकल इनका प्रयोग कम ही किया जाता है । आजकल डीएनए आधारित आणविक चिन्हकों का प्रयोग बहुत प्रचलित है। इसका प्रयोग विभिन्न प्रकार की फसलों एवं वृक्षों में कई वर्षों से सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

आण्विक चिन्हकों के निम्नलिखित लाभ हैं –

1. नई किस्मों का विकास तेजी से किया जा सकता है।
2. अप्रचलित एवं जटिल गुणों वाले पौधों की पहचान आसानी से की जा सकती है।
3. फसलों के जननद्रव्य में उपस्थित विभिन्नताओं एवं सामानताओं का ऑकलन किया जा सकता है।
4. मात्रात्मक गुणों की आनुवंशिकी का अध्ययन किया जा सकता है।
5. प्रजातियों की पहचान की जा सकती है।
6. संगरोधन (क्वैरेंटाइन) में पहचान किया जा सकता है।

वर्तमान समय में आणविक चिन्हकों का प्रयोग करके सरसों में सफेद रतुली के लिए प्रतिरोधक किस्म और अधिक गुणवत्ता वाली सरसों की किस्म का विकास किया जा रहा है।

2. पराजीनी तकनीकी– जब किसी जीव में आनुवंशिक अभियन्त्रिकी द्वारा किसी अन्य जीव का जीन समायोजित करते हैं तो इसे पराजीनी तकनीक कहा जाता है। जब किसी फसल में वांछित गुणों के लिए दाता पौधों की उपलब्धता का अभाव होता है तो ऐसी परिस्थिति में पराजीनी तकनीक एक वरदान सिद्ध होती है। उदाहरण के लिए, कपास की फसल में कीट प्रतिरोधी दाता जननद्रव्य का अभाव होने के कारण कीट प्रतिरोधी किस्मों का विकास नहीं हो पा रहा था। किन्तु पराजीनी तकनीक की सहायता से जब एक जीवाणु (*बैसिलस थुरेंजिएन्सिस, बीटी*) से लिए गए कीट प्रतिरोधी 'क्राई' जीन को कपास में समायोजित किया गया तो कीटप्रोधी बीटी कपास किस्म का विकास सम्भव हुआ। बीटी कपास को भारत में उगाने की अनुमति भारत सरकार द्वारा 26 मार्च, 2002 को दी गई। वर्ष 2002 बाद बीटी कपास का क्षेत्रफल भारत में प्रतिवर्ष बढता गया है जो किसानों के बीच इसकी लोकप्रियता का प्रमाण है। बीटी कपास उगाने से कपास के उत्पादन में 31 प्रतिशत की वृद्धि तथा कीटनाशकों के प्रयोग में लगभग 40 प्रतिशत की कमी आई है।

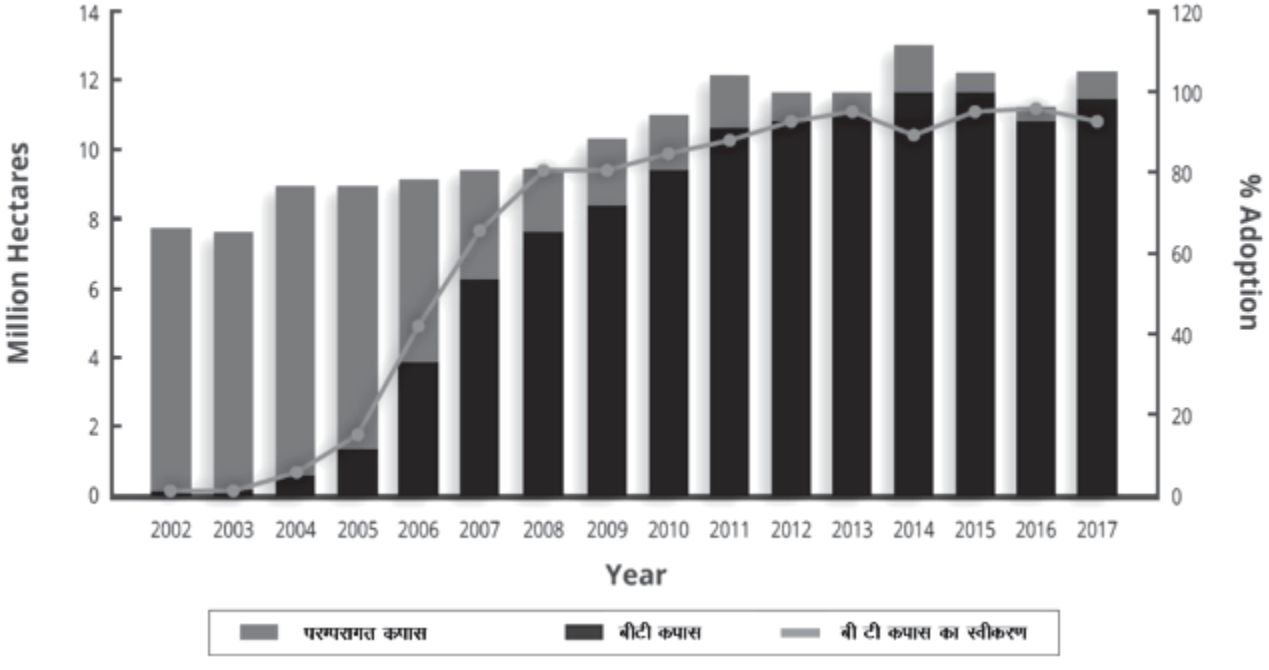

चित्र 3: 16 वर्षों में बी टी कपास का भारत में स्वीकरण (2002–2017) (स्रोतः आई.एस.ए.ए.ए. 2017)

विश्व की पहली पराजीनी फसल टमाटर की एक 'फ्लेवरसेवर' उगाने एवं बाजार में बेचने की अनुमति वर्ष 1994 में संयुक्त राज्य अमेरिका में दी गयी। इसके बाद विभिन्न प्रकार की फसलों में पराजीनी फसलों का विकास हुआ जैसे सोयाबीन, कैनोला, मक्का, धान, पपीता, सेब, बैंगन और कपास आदि। सारणी 1 में विभिन्न पराजीनी फसलें जिन्हें विश्व की कई देशों में उगाने की अनुमति प्राप्त हैं, की जानकारी दी गई है। वर्ष 2017 में विश्व के 24 देशों के 1 करोड़ 70 लाख किसानों ने 198 करोड़ 90 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में पराजीनी फसलों की खेती की।

सारणी 1: वर्ष 1966–2017 तक जीएम–फसलों का बढ़ता क्षेत्रफल (मिलियन हेक्टेयर और मि. एकड़) (स्रोतः आई.एस.ए.ए.ए. 2019)

वर्ष	मिलियन हेक्टेयर	मिलियन एकड़
1996	1.7	4.2
1997	11	27.2
1998	27.8	68.7
1999	39.9	98.6
2000	44.2	109.2
2001	52.6	130
2002	58.7	145
2003	67.7	167.3
2004	81	200.2
2005	90	222.4
2006	102	252
2007	114.3	282.4
2008	125	308.9
2009	134	331.1
2010	148	365.7
2011	160	395.4
2012	170.3	420.8
2013	175.2	432.9
2014	181.5	448.5
2015	179.7	444
2016	185.1	457.4
2017	189.8	469
Total	2,339.50	5,780

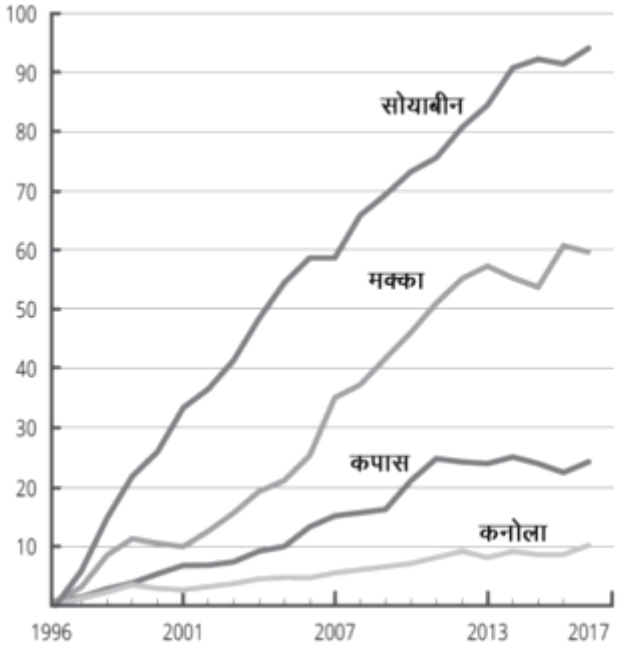

चित्र 4: प्रमुख वैश्विक जीएम–फसलों का क्षेत्रफल, (1996–2017) मिलियन हेक्टेयर में (स्रोतः आई.एस.ए.ए.ए. 2019)

विश्व में सबसे ज्यादा क्षेत्रफल पर उगाई जाने वाली जीएम फसलों का प्रमुख गुण है खरपतवारनाशी प्रतिरोधकता तथा सोयाबीन सबसे ज्यादा क्षेत्रफल पर उगाई जानी वाली जीएम फसल है। इसके बाद जीएम मक्का का स्थान आता है। पराजीनी फसलों के संभावित खतरों से कहीं ज्यादा इसके प्रत्यक्ष लाभ है। समय के साथ इसमें नित नए सुधार हो रहे हैं तथा नई पीढ़ी की अनुक्रमण तकनीकों व जीनोम संपादन जैसी तकनीकों के साथ पराजीनी तकनीक और भी ज्यादा सक्षम और कुशल हुई है।

पराजीनी सरसों (जीएम मस्टर्ड)–भारत में सरसों की पराजीनी किस्म 'धारा मस्टर्ड हाईब्रिड –11 (डीएमएच–11) का विकास प्रो. दीपक पेंटल के नेतृत्व में दिल्ली विश्वविधालय के 'सेन्टर फॉर जेनेटिक मैनिपुलेशन ऑफ क्राप प्लांट' के वैज्ञानिकों द्वारा किया गया है। इस पराजीनी सरसों में जीवाणु से दो जीन्स बारनेज और बारस्टार का स्थानान्तरण किया गया है जिससे सरसों में संकर (हाईब्रिड) किस्मों का उत्पादन आसानी से किया जा सकेगा। जीएम सरसों को भारत में पराजीनी फसलों की निगरानी करने वाली संस्था 'जेनेटिक इंजीनियरिंग अप्रेजल कमीटी (जी.ई.ए.सी.) द्वारा हरी झण्डी मिल चुकी है। हांलाकि, मानव स्वास्थ्य पर इसके दूरगामी परिणामों की जानकारी के अभाव के कारण पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा अभी इसकी खेती के लिए अनुमति नही मिली है।

❑❑❑

सरसों में समेकित नाशीजीव प्रबंधन

अमर चंद[1], विकास कुमार[2], वीरेन्द्र कुमार[3]

[1]विद्यावाचस्पति छात्र, —कृषि कीट विज्ञान, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर (राज.)

[2]विद्यावाचस्पति छात्र, प्रसार शिक्षा, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर (राज.)

[3]स्नातक छात्र, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

सरसों वर्गीय फसलें हमारे देश की तिलहन अर्थव्यवस्था में मुख्य भूमिका निभाती है। इन फसलों की बढ़ोतरी का सीधा असर दुर्लभ विदेशी मुद्रा की बचत में होता है। इन फसलों में तोरिया, पीली व भूरी सरसों, गोभी सरसों, कर्ण राय, राया (भारतीय सरसों) व तारामीरा हैं। इन फसलों की खेती लगभग 6.5 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र में की जाती है जिससे लगभग उत्पादन 7.96 मिलियन टन होता है। सरसों का तेल स्वास्थय के लिए बहुत लाभदायक होता है। सरसों की खेती अधिकतर वर्ष सिंचित नमी अथवा सीमित सिंचाई सुविधा वाले क्षेत्रों में की जाती है। इन फसलों की उपज को बढ़ाने तथा उसको टिकाऊ बनाने के मार्ग में एक प्रमुख समस्या नाशीजीवों का प्रकोप है जो कुछ हद तक इन फसलों के अस्थिर उत्पादन के लिए उत्तरदायी है। ये नाशीजीव सरसों में 10 से 96 प्रतिशत तक उपज में हानि पहुंचाते हैं।

प्रमुख नाशीजीव

चेपा/माहू– यह कीट छोटा, कोमल, सफेद–हरे रंग का होता है। इस कीट के शिशु और प्रौढ़ दोनों सरसों फसल में पौधों के विभिन्न भागों से रस चूसते हैं। यह प्रायः दिसम्बर के अन्त से लेकर फरवरी के अन्त तक सक्रिय रहता हैं। इस कीट की आर्थिक हानि की सीमा 10 से 20 माहू मध्य तना के 10 सेंटीमीटर भाग में है। इससे उपज में लगभग 25 से 40 प्रतिशत तक की हानि हो सकती है।

चितकबरा कीट– इस कीट के शिशु तथा प्रौढ़ दोनों ही सरसों फसल को पौध की अवस्था से लेकर, वनस्पति, फली बनने और पकने अवस्था में रस चूसकर हानि पहुंचाते हैं और बाद में मॅड़ाई के लिए रखे गये सरसों पर भी आक्रमण करते हैं। जिससे दाने सिकुड़ जाते हैं तथा उत्पादन व तेल की मात्रा में भारी कमी हो सकती हैं।

काले धब्बों का रोग/आल्टरनेरिया पर्ण अंगमारी– यह रोग बड़े पैमाने पर सरसों फसल में लगता है। इसका प्रकोप पत्तियों, तनों, फलियों इत्यादि पर हल्के भूरे रंग के चक्रीय धब्बों के रूप मे प्रदर्शित होता है और बाद में ये धब्बे हल्के काले रंग के बडे आकार के हो जाते है। इससे बीज की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। जिस कारण इसकी अकुंरण में कमी एवं बाजार भाव कम मिलता है। गीला व गर्म मौसम या अदल–बदल के वर्षा व धूप तथा तेज हवाएँ इस रोग को बढ़ाती हैं।

सफेद रतुआ– यह रोग सर्वप्रथम पत्तियों पर आता है। जब तना तथा पुष्पक्रमों में दिखाई पड़ता है, इससे सरसों फसल के पुष्पक्रम फूल कर विकृत आकार के हो जाते हैंद्य जिससे उत्पादन में 17 से 34 प्रतिशत तक कमी आती है। यदि हवा के साथ तेज वर्षा होती है, तो यह रोग तीव्र गति से फैलता है।

स्कलेरोटिनिया विगलन– इस रोग मे सरसों फसल के पत्तों व तनों पर लंबे चिपचिपे धब्बे दिखाई देते हैं, जो बाद में कवक की वृद्धि से ढक जाते हैं। इस रोग का प्रकोप फूल आने की अवस्था से शुरू होता है। जब मौसम ठण्डा व नम होता है, तो इस रोग की उग्रता बढ़ती है। इस रोग से सूखे पौधों के तनों में काले रंग वाले पिंड बन जाते हैं।

चूर्णिल आसिता– प्रारंभ में यह रोग सरसों फसल के पौधों के तनों, पत्तियों एवं फलों पर श्वेत, गोल आटे जैसे चूर्णित धब्बों के रूप में दिखाई देता है। तापमान की वृद्धि के साथ–साथ ये धब्बे आकार में बड़े हो जाते हैं।

लाभप्रद जीव

- काक्सीनेला– इस के शिशु दुबले एवं इनके वक्षांग एवं पैर अच्छी तरह से विकसित होते हैं। इनके प्रौढ़ चमकीले, पीले, नारंगी या गहरे लाल रंग के होते है।
- क्रायसोपरला– प्रौढ़ कीट के लेसविंग हल्के हरे रंग के 12 से 20 मिलीमीटर लम्बे होते हैं। इनके पंख पारदर्शी एवं हरे पीले रंग के होते हैं और शरीर कोमल होता है।
- ट्राइकोडर्मा– ट्राइकोडर्मा एक महत्वपूर्ण जैविक नियंत्रण कवक हैद्य इनका समूह (कालोनी) सामान्यतः हरे रंग का होता है। ट्राइकोडर्मा कवक सरसों के विभिन्न रोगों जैसे सफेद रोली, एवं स्कलेरोटिनिया गलन रोग की रोकथाम में प्रयोग किया जाता है।

समेकित नाशीजीव प्रबंधन

सरसों फसल को नाशीजीवों के प्रकोप से बचने और इनसे होने वाली हानि को आर्थिक परिसीमा से नीचे रखने हेतु समेकित नाशीजीव प्रबन्धन अपनायें। इसके अन्तर्गत फसल की अवस्थानुसार निम्न उपाय करें जैसे–

बिजाई पूर्व प्रबंधन

- ग्रीष्म कालीन गहरी जुताई– ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करें।
- पानी की निकासी– बोये जाने वाले खेत को अच्छी तरह तैयार करके, पानी की निकासी का उचित प्रबन्ध करें।
- फसल के अवशेषों को नष्ट करना– पूर्व की फसल के अवशेषों और रोग ग्रसित पौधों को एकत्र कर जला दे एवं खेत को साफ–सुथरा रखे।
- समुचित फसल चक्र– नाशीजीवों की निरन्तरता को समाप्त करने के लिए उपयुक्त फसल चक्र अपनायें।
- सन्तुलित उर्वरक– सरसों में अनुमोदित किए गए सन्तुलित उर्वरकों का प्रयोग करें। फसलों में अधिक मात्रा में नाइट्रोजन का प्रयोग करने से चूषक कीटों (माहू इत्यादि) व बिमारियों का आक्रमण बढ़ जाता है। 15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से जिंक सल्फेट. सल्फर (स्थान विशेष) का मिटटी में अनुप्रयोग करें।

बिजाई के समय प्रबंधन

- उचित समय पर बिजाई– सरसों की सही समय (01 अक्टूबर से 31 अक्टूबर) के दौरान बुवाई करें।
- प्रमाणित बीज– सरसों फसल क्षेत्र के लिए स्वीकृत, उन्नत, स्वस्थ रोग रहित प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें।
- भूमि उपचार– भूमि में ट्राइकोडरमा कवक उत्पाद 2.5 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर को 50 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर में मिलाकर, सरसों की बुवाई से पूर्व अवश्य मिलाना चाहिएद्य जिससे बीमारियों का प्रकोप कम होता है।
- बीजोपचार– ट्राईकोडरमा आधारित जैविक उत्पादक द्वारा 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से या ताजा बनाये हुये लहसुन सत् से 2 प्रतिशत की दर से बीजोपचार करें।
- उचित दूरी– बीज की सिफारिश से ज्यादा मात्रा का प्रयोग न करे व कतार से कतार की व पौधे से पौधे की उचित दूरी बनाये रखें।

वानस्पतिक अवस्था में प्रबंधन

- सरसों फसल के छोटे पौधों में सिंचाई करने से पौधे चितकबरा कीट के आक्रमण को सहन कर पाने में काफी सक्षम हो जाते हैं।
- सरसों फसल में माहू के प्रकोप से प्रभावित टहनियों को प्रारम्भिक अवस्था में ही तोड़कर नष्ट कर दें।
- माहू के प्राकृतिक शत्रु (परभक्षी दुश्मन) कीट जैसे क्राइसोपा, सिरफिड, काक्सीनेला आदि की कीटनाशकों से रक्षा करे।
- सरसों फसल के माहू और पर्यावरण संतुलित प्रबंधन के लिए 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से डाइमिथोएट या आक्सीडेमेटोन मिथाईल का छिडकाव करे तथा तदुपरांत 5000 भृंग प्रति हेक्टेयर की दर से काक्सीनेला सेप्टेमपंक्टाटा को छोड।
- सरसों फसल में माहू के नियंत्रण के लिए परभक्षी कीट क्राइसोपरला के 45000 से 50000 शिशु प्रति हेक्टेयर की दर से पूरे खेत में छोड़ें।
- सरसों की फसल में आवश्यकता से अधिक पौधों का विरलीकरण अवश्य करें, कीटों व रोगों से ग्रसित पौधों को खेत से निकालकर नष्ट करें।
- सरसों फसल की आवश्यकतानुसार 2 से 3 सिंचाई जैसे पहली सिंचाई फूल आते समय, दूसरी सिंचाई फली बनते समय तथा तीसरी सिंचाई दाना भरते समय करें।

फूल व फली अवस्था में प्रबंधन

- सरसों फसल के खेत का रोजाना भ्रमण करें व नाशीजीव दिखने पर नियंत्रण के उपाय तुरंत अपनाए।
- ताजा बनाये हुये लहसुन सत् से 2 प्रतिशत या ट्राइकोडरमा कवक उत्पाद 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिडकाव करें या कार्बन्डाजिम 0.1 प्रतिशत मैंकोजेब (गोभी वर्गीय फसलों में लेबल क्लेम है, जबकि सरसों में नहीं है) 0.2 प्रतिशत की दर से जरूरी होने पर पर्णीय छिड़काव या सफेद रतुआ के ज्यादा प्रकोप पर मैटालैक्सिल. मैन्कोजेब कवकनाशी का 2.5 ग्राम प्रति लीटर की दर से पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
- सरसों फसल में स्कलरोटिनिया तना गलन रोग ग्रसित पौधे जो कि सामान्य पौधो से पहले पक जाते है, को पिंड (स्क्लरोशिया) बनने से पूर्व ही जड़ से उखाड़ कर बाहर निकाल दे और बाद में रोग ग्रसित अवशेषों को जला दे।
- समय–समय पर सरसों के खेत से खरपतवार निकालते रहे व मधुमक्खियों को कीटनाशकों के नुकसान से बचाने के लिए कीटनाशकों का छिड़काव शाम के समय ही करें।

नाशीजीव सहनशील किस्में

- सफेद रतुआ– बायो वाई एस आर और जे एम– 1 प्रमुख है।
- स्कलेरोटिनिया गलन– पूसा आदित्य, किरण, पूसा करिश्मा और आर एल एम– 619 प्रमुख है।
- चुर्णिल असिता– पूसा सरसों– 26 प्रमुख है।

राई–सरसों फसलों में प्रेरित उत्परिवर्तन की महत्वता

रितिका, हरि सिंह मीना, प्रभू दयाल मीना
भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

प्रेरित उत्परिवर्तन पौधो में "म्यूटेन्ट्स (उत्परिवर्तीयों)" के रूप में विविधता उत्पन्न करने का एक प्रमाणित तरीका है। पादप प्रजनन में मौजूदा जर्मप्लाज्म को सप्लीमेंट करने व कुछ विशिष्ट लक्षणों में सुधार के लिए यह एक स्थापित टूल है। इस तकनिक के माध्यम से कई फसलों में अनेक प्रजातियों को विकसित कर किसानों के लिये जारी भी किया गया है। विश्व में 1930 से 2014 के मध्य लगभग 3200 से भी अधिक उत्परिवर्ती किस्में विकसित की गयी है। दुनिया में उत्परिवर्ती पादप किस्मों के विकास में एशिया अग्रणी (1965 किस्में) है। विश्व स्तर पर तीन एशियाई देश चीन, जापान व भारत इस सूची में शीर्ष पर हैं। राई–सरसों फसलों में भी फसल सुधार हेतु प्रेरित उत्परिवर्तन के कई प्रयास किए गए है एवं वांछित लक्षणों के लिए अनेक उत्परिवर्ती उत्पन्न करने में सफलता भी हांसिल की है।

किसी भी फसल सुधार कार्यक्रम की सफलता के लिए संबंधित फसल जर्मप्लाज्म में विभिन्न लक्षणों के लिए आनुवांशिक विविधता का उपलब्ध होना आवश्यक है। सामान्यतः सभी पादप प्रजातियों में प्राकृतिक रूप से भरपूर विविधता पाई जाती है। परंतु अगर किसी फसल अथवा पादप प्रजाति में वांछित गुण, प्राकृतिक रूप से उपलब्ध जर्मप्लाज्म में मौजूद नही है तो इसके लिए पादप प्रजनन की विभिन्न विधियों द्वारा प्रयास किये जाते है। इस हेतु प्रेरित उत्परिवर्तन भी एक प्रमाणित तरीका है एवं इस विधि की उपयोगिता इस तथ्य से स्पष्ट है कि बहुत सारी प्रमुख फसलों में उत्परिवर्तीयो को नई किस्मों के रूप में जारी किया जा चुका है। मौजूदा जर्मप्लाज्म को सप्लीमेंट करने व कुछ विशिष्ट लक्षणों में सुधार के लिए यह एक स्थापित टूल है। फसल सुधार के दौरान आनुवांशिक विविधता उत्पन्न करने व बेहतर गुणों युक्त उत्परिवर्तीयों का सही चयन व इस्तेमाल इस पर कार्य करने वाले व्यक्तियों की क्षमता पर निर्भर करता है। आधुनिक फसल सुधार प्रयासों में जर्मप्लाज्म संग्रह में मौजूद अनुकूल एलील्स का बहुत अधिक गहन उपयोग किया है, जिसके कारण फसलों की मूल विविधता में संकीर्णता (आनुवंशिक आधार संकीर्ण) आती जा रही है। इसलिए यह आवश्यक है कि जर्मप्लाज्म के नए एवं असंबंधित स्रोतों का उपयोग कर आनुवंशिक विविधता में विस्तार करने का प्रयास किया जाए।

प्रेरित उत्परिवर्तन पौधो में लक्षण विभिन्नता उत्पन्न कर वांछित गुणों को प्रेरित करने की संभावना व्यक्त करता है। ये लक्षण या तो संबंधित जर्मप्लाज्म में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध नहीं हैं या विकास के दौरान किसी कारण से विलुप्त हो गए है। जब पादप प्रजनकों के पास उपलब्ध जीन पूल में किसी विशेष बीमारी के प्रति प्रतिरोध हेतु या अन्य जैविक या अजैविक तनाव के प्रति सहिष्णुता के लिए कोई जीन नहीं उपलब्ध होते है, उस समय इन लक्षणों को उत्पन्न करने के लिए उत्परिवर्तन प्रेरण एक स्पष्ट विकल्प माना जाता है। हॉलाकि प्रेरित उत्परिवर्तन द्वारा वांछित लक्षणों की प्राप्ति एवं उनका सही चयन व लक्षित उपयोग एक बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य है। जिसमें काफी समय, धन व साधनों की आवश्यकता होती है। प्रेरित उत्परिवर्तन के माध्यम से उत्पन्न उत्परिवर्तीयों में उपयोगी उत्परिवर्तीयों की आवृत्ति 0.1 प्रतिशत से भी कम होती है एवं अधिकांश संख्या अनुपयोगी या हानिकारक उत्परिवर्तीयों की पाई जाती है। अतः सामान्यतया इसे किन्ही विशेष परिस्थितियों में कुछ विशिष्ट लक्षणों में सुधार के लिए एक सप्लीमेंट के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

आयनीकरण विकिरण द्वारा उत्परिवर्तन का कृत्रिम समावेश 20वीं शताब्दी की शुरुआत में हुआ। लेकिन यह साबित करने में लगभग 30 वर्ष लगे कि पादप प्रजनन में इस तरह के बदलावों का इस्तेमाल भी किया जा सकता है। आणविक एवं जैव रासायनिक आनुवंशिकी की प्रगति के साथ किसी भी प्रजनन कार्यक्रम के लिए प्रेरित उत्परिवर्तन अपरिहार्य पाए गए हैं। प्रेरित उत्परिवर्तन सहित फसल सुधार की विभिन्न विधियो के फलस्वरूप वैश्विक स्तर पर कृषि उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। स्वीडन 1929 के बाद से स्वालॉफ रिसर्च स्टेशन पर गुस्टाफसन जैसे वैज्ञानिकों के प्रयासों के कारण उत्परिवर्तन प्रजनन में बहुत आगे बढ़ गया। प्रेरित उत्परिवर्तन जीनोम में अधिक या कम अनियमित रूप से होते हैं, यहां तक कि उनके लक्ष्य को निर्देशित नहीं किया जा सकता है। प्रेरित म्यूटेशन का उपयोग आमतौर पर पौधों में गुणात्मक और मात्रात्मक लक्षणों के लिए आनुवंशिक सुधार के लिए किया जाता है।

सन् 1927 में मुलर ने *ड्रोसोफिला मेलानोगेस्टर* में एक्स–रे किरणों की उत्परिवर्तजन क्रिया की खोज की जिसके लिए उन्हें वर्ष

1947 में नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वर्ष 1929 में स्टेडलर ने जौ व मक्का में एक्स–रे किरणों की उत्परिवर्तजन क्रिया को दर्शाया एवं इसके साथ ही पौधों में उत्परिवर्तन प्रजनन की शुरुआत हुई। शब्द उत्परिवर्तजन (म्यूटाजन) कृषित पादपो या फसलों में नए मूल्यवान लक्षण उत्पन्न के लिए पादप डीएनए में यादृच्छिक या साइट निर्देशित उत्परिवर्तन के लिए उपयोग होता है। एफएओ तथा आईएईए डेटाबेस के अनुसार म्यूटेजेनिक एजेंटों का उपयोग करके रोग प्रतिरोधक क्षमता में सुधार के साथ 320 किस्में विकसित की जा चुकी हैं जो कि प्रत्यक्ष उत्परिवर्ती के रूप में या उत्परिवर्ती के साथ संकरण से या संतति चयन के माध्यम से विकसित की गयी है।

राई–सरसों भारतीय उप–महाद्वीप की एक महत्वपूर्ण पारंपरिक तिलहनी फसल है। उच्च उपज देने वाली किस्मों की उपलब्धता इन फसलों में बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। देश में खाद्य तेल उत्पादन व आयात के बीच के बहुत बड़े अन्नर को कम करने के लिए राई–सरसों की उन्नत किस्मों का विकास अति–आवश्यक है। प्रेरित उत्परिवर्तन तकनीक को राई–सरसों में वांछित गुणों जैसे पौधे की ऊँचाई, पौधे में फलियों की संख्या, प्रति फली दानों की संख्या, 1000–दानों का वजन, उपज, तेल की मात्रा व रोग प्रतिरोधिता आदि लक्षणों के लिए अपनाया जा सकता है।

हॉलांकि 1940–50 के दौरान राई–सरसों में उत्परिवर्तन के प्रयास शुरू किए गए परंतु इसने 1960 में बहुत अधिक गति प्राप्त की। कई अनुसंधानकर्त्ताओं ने राई–सरसों में पत्ती कटाव के आकार, पत्तियों की बनावट, प्रकार और संशोधन के लिए म्यूटेंटस की पहचान की। सिंह इत्याादि (1975) ने भारतिय सरसों (*बी. जूंन्सीया*) में एक क्लोरोफिल की कमी वाले उत्परिवर्ती को अलग किया। हॉक (1978) ने बी. कैंपेस्ट्रिस में झुर्रीदार पत्तियों और दांतेदार पंखुड़ियों के लिए एक उत्परिवर्ती की पहचान की। दास एवं रहमान (1988) और शाह इत्यादि (1990) ने सरसों की उच्च उपज क्षमता वाले बौने म्यूटेंट को अलग किया। भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, मुम्बई पर प्रेरित उत्परिवर्तन के माध्यम से विभिन्न लक्षणों के लिए अनेक उत्परिवर्तीयों (टीएम सिरिज के म्यूटेन्ट्स) की पहचान कर विकसित किया गया है एवं टीएम–1, टीएम–4 एवं टीएएम–108 जैसी किस्मों का विकास किया है। भौतिक एवं रासायनिक उत्परिवर्तजनों का उपयोग विभिन्न लक्षणों के लिए विभिन्नता हेतु ब्रासिका फसलों में किया जा रहा है। क्लोरोफिल उत्परिवर्ती , बौनापन, फूलों का रंग, लोकों की संख्या, बीज कोट का रंग, तेल की मात्रा, जड़ आकृति, फैटी एसिड संरचना, कीट व रोग प्रतिरोध एवं बीज उपज और संबंधित घटकों के लिए उत्परिवर्ती ब्रासिका जुंन्सीया में अलग किए गए है। इन प्रयोगों की समीक्षा से यह पता चलता है कि प्रेरित उत्परिवर्तन का उपयोग राई–सरसों में गुणात्मक और मात्रात्मक सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में किया जा सकता है। वैज्ञानिको ने राई–सरसों में कई उत्कृष्ट परिणाम भी प्राप्त किये है। प्रेरित उत्परिवर्तन के ठोस प्रयास राई–सरसों सुधार कार्यक्रम को अधिक गति प्रदान करने में मदद्गार है।

डबल अगुणित (डीएच) और उत्परिवर्तन तकनीकों ने विभिन्न रूपात्मक लक्षणों के साथ–साथ परिवर्तित फैटी एसिड रचनाओं के उत्पादन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन उत्परिवर्तन के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष (संकरण के माध्यम से) उपयोग के परिणामस्वरूप कई उच्च उपज वाली किस्मों को अलग किया गया है। बौने और पीले बीज कोट की किस्मों का विकास फायदेमंद हो सकता है। परिवर्तित फैटी एसिड संरचना के लिए उत्परिवर्तन को तेल का पोषणमान बढ़ाने के लिए अलग किया गया है। कम ईरुसिक एसिड उत्परिवर्ती उनमें से एक है।

उच्च ईरुसिक एसिड लाइनों का विकास

उच्च इरूसिक एसिड प्रतिशत बाली किस्मों का विकास वर्तमान में गहन शोध का विषय है क्योंकि यह फैटी एसिड कई औद्योगिक अनुप्रयोगों के लिए एक मूल्यवान फीडस्टॉक है। इरूसिक एसिड के प्राथमिक स्रोतों में से एक ब्रैसिका नैपस है, जिसमें कुल फैटी एसिड का लगभग 45–55 प्रतिशत इरूसिक एसिड होता है। अन्य प्रजातियों, जैसे कि *क्रैम्बे एबिसिनिका, सिनैपिस अल्बा* या *लूनारिया एनुआ* को इरूसिक एसिड उत्पादन के लिए संभावित माना गया है। हालांकि, भारतीय (*ब्रैसिका जुन्सिया*) या इथियोपियाई सरसों (*ब्रैसिका केरिनेटा*) जैसी अन्य प्रजातियों पर भी कुछ ध्यान दिया गया है, क्योकि अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में इन फसलों के सूखा, फली बिखरना, रोगों व कीटों के प्रति प्रतिरोध जैसे कई लाभ है। म्यूटेशन ब्रीडिंग के माध्यम से ब्रैसिका में उच्च ईरुसिक एसिड लाइनो की पहचान की है। भविष्य के कार्यक्रमों में इसका उपयोग बहुत उच्च ईरुसिक एसिड वाली लाइनों को विकसित करने के लिए किया जा रहा है।

कीट व रोग प्रतिरोध के लिए उत्परिवर्तन प्रजनन

प्राकृतिक वातावरण में पौधे अनेक प्रकार के लाभदायक व हानिकारक जीवों /कारको (रोगजनकों) का सामना करते है

और जीवित रहने एवं सफलतापूर्वक प्रजनन के लिए विभिन्न रणनीतियों व तंत्रों का सामना करते है। बेसल प्रतिरोध मेजबान सेल में रोगजनक के प्रवेश को निष्क्रिय करने के लिए पहले से मौजूद भौतिक और रासायनिक बाधाओं द्वारा प्रदान की गई वैधानिक रक्षा के रूप में प्रदर्शित होती है। बेसल प्रतिरोध का एक अन्य पहलू कोशिका की सतह रिसेप्टर्स द्वारा माइक्रोबियल सतहों की मान्यता है जो प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया को ट्रिगर करते हैं और व्यापक स्पेक्ट्रम प्रतिरोध की पेशकश करते हैं। उत्परिवर्तन प्रजनन का जीन क्षरण को रोककर जैव विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान है। कीट व रोग प्रबंधन फसल सुधार के मुख्य लक्ष्यों में से एक है। रोगजनकों से कृषि में हर साल उपज के रूप में बड़ा आर्थिक नुकसान होता है। जब उचित प्रतिरोध का स्रोत उपलब्ध नही होता है, उत्परिवर्तन के माध्यम से कीट व रोग प्रतिरोधी उत्परिवर्तीयों का चयन कर प्रतिरोधी किस्मों का विकास किया जाता है। वैज्ञानिको ने इस क्षेत्र में काफी सफलता भी हासिल की है एवं इसके और अधिक प्रयास किये जा रहे है।

❑❑❑

भूमि पुत्र किसान को, सत्-सत् करूँ प्रणाम।
रात दिना देखे नहीं, करे खेत में काम।।
करै खेत में काम, लगावै शक्ति सारी।
पडै धूप जब तेज, पसीना भारी आवै ।
सर्दी पडै कठोर खेत में पानी लगावै।।
रातों मोडे कूंड कपै जब हरि ते हित लगावै।

समय पर बीज मिलै, न खाद, लाईट बिन होय,
कृषक बर्वाद, मिले नहीं मजदूर गॉव में हो गये सब आजाद।
बोर करा लियो आज कनैक्शन, पॉच साल दरम्यान, तेरी जय हो वीर किसान।।

खाद्य तेल एवं स्वास्थ्य

अनुभूति शर्मा, मेघना गर्ग, अरूण कुमार
भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

भारतीय आहार एवं रसोई में तेल का मुख्य स्थान है। खाद्य तेल को मुख्यतयाः सब्जियों में तड़का लगाने तथा तलने के लिये उपयोग में लिया जाता है। खाद्य तेलों की खपत में हो रही लगातार वृद्धि के साथ–साथ पिछले कुछ वर्षों में इनकी गुणवत्ता के प्रति भी लोगों की जागरूकता बढ़ी है। तेल या घी से हमारे शरीर को ऊर्जा भी अधिक (8.8–9 किलो कैलोरी प्रति ग्राम तेल) मिलती है। खाद्य तेल से हमें पादप स्टेरॉल्स तथा विटामिन–ई भी प्राप्त होते हैं जोकि प्रतिऑक्सीकारक का कार्य करते है।

आधुनिक युग में तकनीकी विकास के साथ जहाँ एक ओर हम तरक्की की राह पर आगे बढ़ते जा रहे हैं वहीं हमारे खान–पान व रहन–सहन में हो रहे परिवर्तनों के कारण हमारा स्वास्थ्य विभिन्न प्रकार की खतरनाक बीमारियों का शिकार होता जा रहा है। इनमें हृदय रोग सबसे महत्त्वपूर्ण है जिसका प्रमुख कारण खाने में सही घी व तेल का प्रयोग न होना है। भारतीय खाने में तेल का प्रयोग एक अति आवश्यक अंग है। तेल से हमें शक्कर एवं प्रोटीन के मुकाबले दुगुनी मात्रा में उर्जा की प्राप्ती होती है। चर्बी में घुलनशील विटामिन 'ए' और 'डी' भी तेल में विद्यमान होते हैं। इसके अतिरिक्त आवश्यक फैटी एसिड 'लिनोलिक' और 'लिनोलेनिक' एसिड भी प्राप्त होते हैं इनकी कमी से हमारी शारीरिक क्षमता पर बहुत बुरा असर पड़ता है। अलग–अलग परीक्षणों से यह अनुमान लगाया गया है कि अति आवश्यक 'फैटी एसिड' बच्चों के दिमाग के सही विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। खाने हेतु सही तेल का चुनाव व इस्तेमाल हृदय सम्बंधित बीमारियों से बचने में अहम् भूमिका अदा कर सकता है। आज स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता होने के कारण बाजार में उपलब्ध अलग–अलग रिफाइंड तेलों को प्राथमिकता दे रहे हैं। दरअसल यूं तो यह सारे तेल कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रित रखने का ही दावा करते हैं। ऐसे में आपको जरूरत है एक ऐसे तेल की जो एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर हो, जिसे पकाने पर उसके पोषक तत्व भी नष्ट न हो और वह कोलेस्ट्रॉल के स्तर को भी नियंत्रित रखे।

कई घरों में सरसों का तेल इस्तेमाल किया जाता है। सरसों के तेल में काफी मात्रा में विटामिन्सए मिनरल्स और बीटा केरोटीन पाए जाते हैं। इसमें कैल्शियम एवं मैग्नीशियम आयरन व फैटी एसिड भी होता है। इसके अलावा यह कोलेस्टॉल को नियंत्रित करने में भी मदद करता है।अगर सरसों के तेल में किसी तरह की मिलावट नहीं है तो यह सेहत के लिए सेहतमंद विकल्प है। कुछ रसोई घर में तिल के तेल का प्रयोग होता है। इसमें मैग्नीशियमए कैल्शियमए प्रोटीनए फॉस्फोरस और लेसिथिन पाया जाता है। तिल का तेल भी दिल को अस्वस्थ करनेवाले कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को संतुलित रखने में मदद करता है। ऑलिव ऑयल में मोनोसैचुरेटेड फैट्स ज्यादा होता है। इसमें एंटीऑक्सीडेंट्स और विटामिन्स पाए जाते हैं। इस तेल का सेवन करने से शरीर का फैट नियंत्रित रहता है। ऑलिव तेलों का सेवन हमें दिल की बीमारियों और हाई ब्लडप्रेशर से बचाता है। सूरजमुखी के तेल में मौजूद लिनोलेइक एसिड रक्त धमनियों में खून का थक्का बनने से रोकता है। सूरजमुखी के तेल में विटामिन ई का भंडार होता हैए इसमें सेचुरेटेड फैट बहुत ही कम मात्रा में पाया जाता है। दक्षिण के लोगों की रसोई में नारियल तेल का इस्तेमाल अधिक होता है। नारियल के तेल में बना खाना न सिर्फ अधिक पौष्टिक होता है बल्कि वह खाने को अधिक समय तक ताजा भी रखता है। इसमें पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, फाइबर, विटामिन ए, बी, सी और मिनरल प्रचुर मात्रा में पाया जाता हैं, ब्लड प्रेशर और दिल के मरीजों के लिए नारियल का तेल उपयोगी होता है। कालेस्ट्रॉल वैक्स जैसी चिपचिपी चीज है जो शरीर की सभी कोशिकाओं में पाई जाती है। हमारा शरीर बेहतर तरीके से काम कर सके और पाचन क्रिया भी फिट रहे, इसके लिए सही मात्रा में कौलेस्ट्रॉल जरूरी है। कई हॉर्मोंस भी इससे बनते हैं लेकिन अगर यह बढ़ जाए तो धमनियों में जमा होने लगता है। तब यह दिल की बीमारी की वजह बनता है। कई बार शरीर में जमे कौलेस्ट्रॉल का कोई हिस्सा टूटकर धमनियों को ब्लॉक कर देता है जिससे हार्ट अटैक या स्ट्रोक हो सकता है। सामान्यताः 15 फीसदी तक कलेस्ट्रॉल हमें डायट से मिलता है, लेकिन सिर्फ इस पर ही कंट्रोल रखकर हम कौलेस्ट्रॉल से जुड़े खतरे को काफी हद तक कम कर सकते हैं। अगर तेल में एक बार खाद्य पदार्थ पकाया गया है और बार–बार उसी तेल में बाकी चीजें भी बनाई जा रही हैं तो इससे फ्री रैडिकल्स बनने लगते

हैं इससे सूजन और जलन के अलावा अन्य कई बीमारियां पैदा हो जाती हैं यह फ्री रैडिकल्स ारीर की स्वस्थ कोशिकाओं से खुद को जोड़ लेते हैं। फ्री रैडिकल्स कई बार कैंसर को जन्म दे सकते हैं। इसके अलावा तेल को बार–बार इस्तेमाल करने से अथरोस्कॉलरोसिस हो सकता है जिसमें शरीर में बैड कौलेस्ट्रॉल बढ़ जाता है और धमनियां ब्लॉक हो जाती हैं। एक ही तेल को बार–बार इस्तेमाल करने से अम्लता दिल संबंधी बीमारियां, ऐल्टशाइमर्ज बीमारी, पार्किंसन्स बीमारी और गले में जलन हो सकती है।

सभी खाद्य तेलों में कुछ न कुछ औषधीय गुण होते हैं इसलिए इन्हें नजर अंदाज नहीं किया जाना चाहिए। बेहतर होगा कि दिन में नाश्ता, सुबह का खाना और रात का खाना अलग–अलग तरह के तेलों में पकाएं। चाहें तो एक–एक सप्ताह में भी तेलों को बदलकर प्रयोग में ला सकते हैं जिससे कि शरीर को सभी जरूरी तत्व मिलते रहेंगे। तेल की गुणवत्ता से कही अधिक आवश्यक है तेल की उपयोग की जाने वाली मात्रा। तेल कितना भी अच्छा हो, कम ही इस्तेमाल करना चाहिए।

❑❑❑

तेरी जय हो वीर किसान तेरी जय हो वीर किसान,
तेरी मेहनत से इस जग में, पेट भरै इंसान,
तेरी जय हो वीर किसान।।

मुसीबत तरह–तरह की झेलै, शंकट पडै जान पर खेलै,
सरण तू अब ईश्वर की लेलै,
ओलावृष्टि बाढ़, सूखे से होय बहुत नुकसान, तेरी जय हो वीर किसान।।

विभिन्न खाद्य तेलों के तुलनात्मक गुण

अनुभूति शर्मा, मेघना गर्ग, अरूण कुमार
भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

भारत एक विशाल देश है और इसके अनेकों क्षेत्रों के निवासियों ने ऐसे कुछ तेलों के लिए खास पसंद विकसित की है जो अधिकतर उस क्षेत्र में उपलब्ध तेलों पर निर्भर करता है। उदाहरणतः दक्षिण और पश्चिम के लोग मूंगफली का तेल पसंद करते हैं, जबकि पूर्व और उत्तर वाले सरसों का प्रयोग करते हैं। इसी तरह दक्षिण के कई क्षेत्रों में नारियल और तिल के तेल को पसंद करते हैं। उत्तरी मैदानों में बसे लोग मूलतः वसा के उपभोक्ता है और इसलिए वनस्पति तेलों को वरीयता देते है जिसमें सोयाबीन, सूरजमुखी, राइसब्रान तेल और बिनौला तेल जैसे तेलों के आंशिक रूप से हाइड्रोजेनेटेड खाद्य तेल मिश्रण को प्रयोग में लाया जाता है। आधुनिक तकनीकी साधनों के माध्यम से जैसे कि वास्तविक परिष्करण, ब्लीचिंग और डी–ओडराइजेशन सभी तेल व्यवहारिक रूप से रंगहीन, सुगंधरहित और स्वादरहित होते है और इसलिए रसोईघर में आसानी से आपस में बदल जाते हैं। तेल जैसे–सोयाबीन, बिनौला, सूरजमुखी, राइसब्रान, पाम तेल और उसके तरलांश पामोलीन जिसको पहले जाना भी नहीं जाता था वह अब रसोईघर में प्रवेश कर गए है। खाद्य तेल बाजार में कच्चे तेल, परिष्कृत तेल और वनस्पति तेल का कुल अंश मोटे तौर पर क्रमशः 35:, 55: और 10: अनुमानित है। पिछले कुछ वर्षों में परिष्कृत पामोलीन की खपत के साथ–साथ अन्य तेलों के साथ उसका मिश्रण काफी हद तक बढ़ गया है और होटल, रेस्टोरेन्ट और विभिन्न प्रकार के खाद्य उत्पादों को बनाने में बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाता है।

लगभग दो दशकों से भारत में खाद्य तेलों का उत्पादन एवं उपलब्धता इनकी आवश्यकता से काफी कम है। खाद्य तेलों का वर्तमान उत्पादन कुल आवश्यकता का मात्र 40 प्रतिशत ही है। देश की लगातार बढ़ रही जनसंख्या, क्रय शक्ति, आर्थिक प्रगति, तीव्र गति से बदल रहे खान–पान के ढंग तथा 'फास्ट फूड' के बढ़ते प्रचलन के फलस्वरूप खाद्य तेलों की लगातार बढ़ रही मांग (3–4 प्रतिशत प्रति वर्ष) इनके उत्पाद में वृद्धि से अधिक होने के परिणामस्वरूप देश में खाद्य तेलों की आवश्यकता व उत्पादन का अन्तर लगातर बढ़ रहा है जिसकी पूर्ति के लिए प्रति वर्ष पहले की तुलना में अधिक खाद्य तेलों का उत्पादन करना पड़ता है तथा विभिन्न आकर्षक विज्ञापनों के कारण उपभोक्ता को गुमराह किया जाता है, इसलिए खाने योग्य तेलों एवं विभिन्नन खाद्य तेलों के तुलनात्मक गुण का उचित चयन अति आवश्यक है। खाद्य तेलों की खपत में हो रही लगातार वृद्धि के साथ–साथ पिछले कुछ वर्षों में इनकी गुणवत्ता के प्रति भी लोगों की जागरूकता बढ़ी है।

तेल या घी से हमारे शरीर को ऊर्जा भी अधिक (8.8–9 किलो केलोरी/ग्राम तेल) मिलती है द्य तेल से हमें पादप स्टेरॉल्स तथा विटामिन–ई भी प्राप्त होते हैं जोकि प्रतिऑक्सीकारक का कार्य करते है द्य आम जनता कों खाद्य तेल के वसीय अम्लों एवं उसके गुणों के बारे में जानकारी नहीं होती है अथवा बहुत कम होती है जिसके कारण विभिन्न कम्पनियाँ कुछ तेलों कों कोलेस्ट्रोल रहित बताकर जनता को गुमराह करती है, सामान्यतया किसी भी तेल में कोलेस्ट्रोल नहीं होता है। कोलेस्ट्रोल का संशलेषण हमारे शरीर में होता है, तेल के विभिन्न वसीय अम्लों के कारण शरीर में "अच्छा"(एचडीएल) या "बुरा"(एचडीएल) कोलेस्ट्रोल बढ़ता है इसी प्रकार कौनसे वसीय अम्ल हमारे शरीर में कितनी मात्रा में आवश्यक है इसकी भी जानकारी का अभाव है।

तेलों के कार्य–

- इनमे अधिक ऊर्जा प्रदान करने की क्षमता होती है ।
- भोजन को ठोस एवं स्वादिष्ट बनाने में सहायता करता है।
- शरीर के जैविक रूप से सक्रिय यौगिकों के पूर्ववर्ती हैं।
- ए, डी, ई जैसे वसा घुलनशील विटामिन के अवशोषण के लिए वसा की उपस्थिति महत्वपूर्ण है।

तेलों में संतृप्त एवं असंतृप्त प्रकार के वसीय अम्ल पाये जाते है, असंतृप्त वसीय अम्लों में एकल– असंतृप्त वसीय अम्ल (ओलिक, एकोसिनोइक एवं एरुसिक अम्ल) तथा बहु–असंतृप्त वसीय अम्ल (लिनोलोक, लिनोलेनिक एवं अरेचीडोनिक अम्ल) होते है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार अनुशंसित भोजन से प्राप्त कुल ऊर्जा का 10 प्रतिशत भाग ही हमें संतृप्तवसीय अम्लों से लेना चाहिये। कुछ अनुसंधान के अनुसार हमें भोजन में संतृप्त,एकल–असंतृप्त एवं बहु–असंतृप्त वसीय अम्लों को समान मात्रा में लेना चाहिये किसी भी खाद्य तेल में इस समान अनुपात में संतृप्त,एकल–असंतृप्तएवं बहु–असंतृप्त वसीय अम्ल उपस्थित नहीं है। फिर भी मूँगफली तथा चावल की भूसी के तेल में पर्याप्त मात्रा में एकल–असंतृप्त वसीय अम्ल (ओलिक अम्ल) होता है जोकि ओलिव (जैतून) के तेल का सस्ता विकल्प है। इसके अलावा हमें भोजन में स्वाद के अनुसार तेल कों बदलते रहना चाहिये या मिश्रित तेलों का उपयोग करना चाहिये।

सरसों के तेल में 60 प्रतिशत एकल– असंतृप्त वसीय अम्ल होता है और 12 प्रतिशत संतृप्त वसा होता है। सरसों के तेल में 42–60 प्रतिशत इरूसिक अम्ल तथा 10–12 प्रतिशत ओलिक अम्ल, 6–8 प्रतिशत ओमेगा–3, अल्फा–लिनोलेनिक अम्ल और 10–15 प्रतिशत ओमेगा–6, लिनोलेनिक अम्ल होता है। सरसों ओमेगा–3 का एक प्रमुख स्त्रोत है। ओमेगा–3 एक उत्तम बहु–असंतृप्त वसा है जो कि हद्रय को सेहतमंद रखने, आंखों से जुडी समस्याओं से निजात पाने, तथा कैसंर जैसी बिमारियों से लडने की क्षमता रखता है। तेल का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत होते हुए, सरसों के बीजों में बहुत अधिक ऊर्जा पायी जाती है (100 ग्राम बीज से 508 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है।)

हमारे शरीर के लिये लिनोलिक (ओमेगा –6) एवं एल्फा –लिनोलेनिक (ओमेगा –3) वसीय अम्ल आवश्यक होते है तथा इनका शरीर में संशलेषण नहीं होता है इसीलिए इन्हें आवश्यक वसीय अम्ल माना जाता है । इन वसीय अम्लों की पूर्ती हमें वनस्पति जनित खाद्य तेलों अथवा पशु जनित तेलों से होती है ओमेगा–3 वसीय अम्ल जैसे कि इकोसापेंटेनोइक अम्ल (इपीए) तथा डोकोसाहेक्सेनोइक अम्ल (डी एच ए) हमें सिर्फ समुद्री शैवाल तथा मछली से प्राप्त होता है। हमारे परंपरागत तेलों में सिर्फ सरसों के तेल में ही सामान्य मात्रा में एल्फा–लिनोलेनिक वसीय अम्ल उपलब्ध है, परन्तु सभी क्षेत्रों में सरसों का तेल खाने के लिये उपयोग में नहीं लिया जाता है। अलसी के बीज में एल्फा–लिनोलेनिक वसीय अम्ल प्रचुर मात्रा में (50–55:) उपलब्ध होते है। अतः शाकाहारी लोग या जो सरसों का तेल नहीं खाते हैं वे अलसी के बीज को मुखवास के रूप में अथवा सब्जियों या आटे में मिलकर उपयोग कर सकते है, इससे शरीर को आवश्यक ओमेगा–3 वसीय अम्ल प्राप्त हो जाते है तथा भड़काऊ विज्ञापनों से बचा जा सकता है।

अधिक मात्रा में संतृप्त वसा एवं ट्रांस वसा, रक्त वाहिकाओं में वसीय पदार्थों को जमाने का कार्य करती है। यह प्रक्रिया अथररोस्केलोरोसिस कहलाती है तथा यह हृदय रोगों का प्रमुख कारण है। संतृप्त वसीय अम्ल (एसएफए) एवं ट्रांस वसा रक्त में कम घनत्व वाले कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बढ़ाते है जो कि धमनियों में जमने की क्रिया को बढ़ाता है। बहुअसंतृप्त वसीय अम्ल एवं एकलसंतृप्त वसीय अम्ल कम घनत्व वाले कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को घटाने में सहायता करते है एवं अधिक घनत्व वाले कोलेस्ट्रॉल को बढ़ाते है। खाने में संतृप्त एवं ट्रांस वसा कम घनत्व वाले कोलेस्ट्रॉल को अधिक गति से बढ़ाते है ।

अच्छे स्वास्थ्य के लिये हमेशा कच्ची घानी के अथवा फिल्टर किये गये तेल का ही खाने में उपयोग किया जाना चाहिये। रिफाइंड या डबल रिफाइंड तेल को बनाने के लिये उसे हानिकारक रसायनों से उच्च तापमान पर परिष्कृत किया जाता है, जिससे तेल का अपना रंग व गंध तो निकल जाती है पर इसमें हानिकारक रसायनों का अंश रह जाता है तथा ट्रांस–वसीय अम्ल बढ़ जाते है, इसके साथ ही तेल में उपस्थित स्टेरोल्स एवं विटामिन्स भी नष्ट हो जाते है । अलग–अलग तेलों में ओरोजानोल, टोकोफेरॉल, टोकोट्रियोनॉल और फायटोस्टरोल जैसे महत्वपूर्ण घटक है। ज्यादा गर्म करने, बार– बार एक ही तेल को तलने के लिये उपयोग में लेने तथा तेल का वसीयकरण हायड्रोजिनेसन करने (वनस्पती–घी) से ट्रांस–वसीय अम्ल बढ़ जाते है। ट्रांस–वसीय अम्ल हृदय सम्बन्धी बीमारियों को बढ़ावा देते है। तेल को रिफाइंड करने से उसका ज्वलन बिंदु (वह तापमान जिस पर तेल को गर्म करने से उसमें हल्के नीले रंग का धुआँ उठने लगे तथा तेल में उपस्थित उड़ने वाले यौगिक व मुक्त वसीय अम्ल उड़ने लगते है) तो बढ़ जाता है पर ऐसे तेल स्वास्थ्य के लिये घातक होते है।

अतरू हमें खाद्य तेल का चयन करते समय उपरोक्त बातों के साथ ही हमें हमारी जलवायु में उत्पन्न तेलीय फसलों से प्राप्त तेलों का उपयोग करना चाहिये, कंपनियो के आकर्षक विज्ञापनों एवं मिथ्या जानकारी में नहीं आना चाहिये। जैसे कि– सरसों का तेल खाने वाले क्षैत्र के लोग सरसों के तेल में चावल की भूसी का तेल मिलाकर उपयोग कर सकते हैं, जिससे वसीय अम्लों का अनुपात भी बदल जायेगा। इसी प्रकार मूँगफलीध तिल के तेल में सूरजमुखी या चावल की भूसी का तेल मिलाकर उपयोग कर सकते है। तेलों का मिश्रण बनाते समय वसीय अम्लों के अनुपात के अलावा उनकी विशिष्ठ गंध का भी ध्यान रखना चाहिये जैसे कि– सरसों, मूँगफली तथा तिल, इन तीनों के तेल में अपनी विशिष्ठ गंध होती है इसलिये इन्हें मिश्रित नहीं करना चाहिये।

वसा के प्रयोग पर अनुशंसायें–

कई देशों ने न केवल बहुअसंतृप्त वसा के पूर्ण उपयोग की सिफारिश की है, बल्कि ओमेगा 6 और ओमेगा 3 बहुअसंतृप्त का भी संतुलित हिस्सा होने की सिफारिश की है । विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) 0.8–3.0 बहुअसंतृप्त वसा (पीयूएफए) संतृप्त वसा अम्ल (एसएफए) अनुपात और 5–10 के लिनोलिक एसिड (ओमेगा 6) अल्फा लिनेालेनिक एसिड (ओमेगा 3) अनुपात की सिफारिश करता है (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2003)।

❑❑❑

राई–सरसों फसल में एकीकृत पोषक तत्वों का प्रबंधन

मुकेश कुमार मीणा, मोहन लाल दौतानियाँ, हरवीर सिंह
भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

उर्वरकों की उपलब्धता के पूर्व देश में जैविक खादों के माध्यम से खेती होती थी परन्तु हरित क्रान्ति के उद्‌भव के साथ उर्वरकों का अंधाधुन्ध प्रयोग शुरू हुआ। मुख्यतयः तो नाइट्रोजन उर्वरकों का प्रयोग हुआ परन्तु धीरे–धीरे फास्फेटिक एवं पोटेशिक उर्वरकों का भी प्रयोग शुरू हुआ। जिसके कारण मिट्टी से प्राप्त किये जाने वाले अन्य पोषक तत्वों जैसे की मैंग्नीश्यिम, सल्फर, जिंक, लोहा, तॉबा, मैग्नीज, मॉलेब्डिनम, बोरान एवं क्लोरीन की सतत् कमी देखने को मिली। पौधों को इन तत्वों की आवश्यक मात्रा उपलब्ध नहीं हो सकी फलस्वरूप अधिकांश कृषि क्षेत्रों में उत्पादन में ठहराव आया और कुछ क्षेत्रों में उत्पादन में कमी भी आयी। मृदा में भौतिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं में परिवर्तन हुआ। मृदा के जीवांश में भी कमी आयी। मृदा उर्वरता का संतुलन इस प्रकार किया जाये कि फसल की जरूरत के अनुसार उन्हें आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध होते रहे तथा सम्बन्धित फसल की वांछित उपज भी मिले और मृदा स्वास्थ्य सुरक्षित रहे। इसके लिए आवश्यकतानुसार अकार्बनिक एवं कार्बनिक स्रोतों का यथेष्ठ सम्मिश्रण अपरिहार्य है। इस तकनीकी को एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन की संज्ञा दी गई है।

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन के अंतर्गत रासायनिक उर्वरकों, हरी खाद, गोबर की खाद, केचुआ की खाद, जीवाणु खाद आदि के साथ समन्वित उपयोग किया जाता है। समेकित पोषक तत्व प्रबंधन से भूमि की संरचना में सुधार होता है, नमी संरक्षित होती है और भूमि की उर्वरा शक्ति में बढ़ोतरी के साथ साथ उत्पादन भी बढ़ता है। फसल में खाद की मात्रा निर्धारित करने से पहले मृदा परीक्षण कराना आवश्यक है।

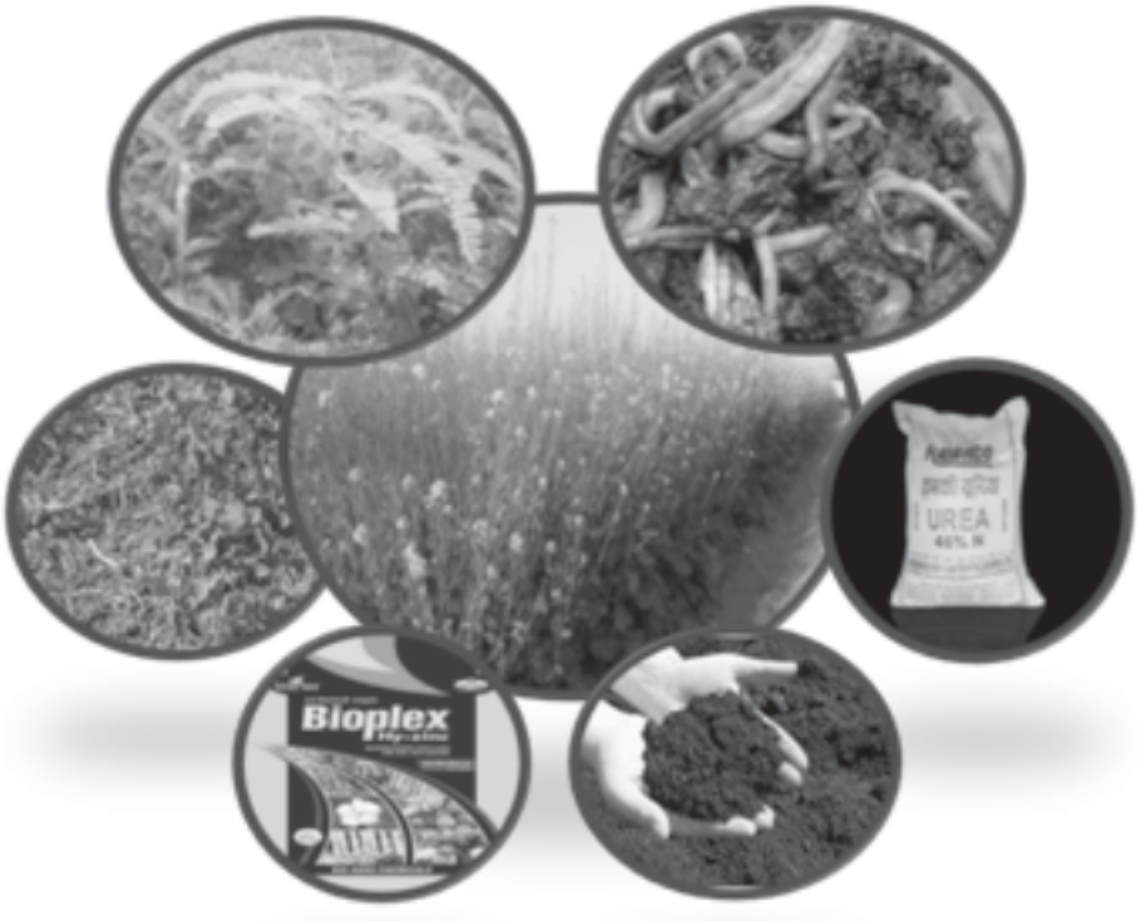

चित्रः एकीकृत पोषक तत्वों का प्रबंधन

एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन हेतु कुछ सुझाव

- मिट्टी परीक्षण के आधार पर ही उर्वरकों एवं जैविक खादों का प्रयोग करें।
- दलहनी फसलों में राइजोबियम कल्चर का प्रयोग अवश्य करें।
- धान व गेहूँ के फसल चक्र में ढैचे की हरी खाद का प्रयोग करें।
- फसल चक्र में परिवर्तन करें।
- आवश्यकतानुसार उपलब्धता के आधार पर गोबर तथा फसल अवशेषों का प्रयोग कर कम्पोस्ट बनाई जाये।
- खेत में फसलावशिष्ट पदार्थों को मिट्टी में मिला दिया जाये।
- विभिन्न प्रकार के जैव उर्वरकों यथा नत्रजनिक संश्लेषी, फास्फेट को घुलनशील बनाने वाले बैक्टीरियल, एलगल तथा फंगल बायोफर्टिलाइजर का प्रयोग करें।

(1) **हरी खाद**– हरी खाद में ढैंचा या सनई को वर्षा शुरू होते ही बोना चाहिए व 45–50 दिन बाद फूल आने से पहले जमीन में दबा देना चाहिये। इससे औसतन 30–40 कि.ग्रा. /हैक्टेयर नत्रजन मिल जाती है। इसके अतिरिक्त लोविया, ग्वार, उर्द या मूँग की फसल राई–सरसों से पहले लेने पर सरसों की अच्छी उपज प्राप्त होती है। इन फसलों के बाद नत्रजन की दर में 40 कि.ग्रा./हैक्टेयरतक की कमी भी की जा सकती है।

(2) **गोबर की खाद**– गोबर की खाद से प्रमुख तत्वों के साथ–साथ सूक्ष्म पोषक तत्व भी उपलब्ध होते है। सिंचित क्षेत्रों के लिये 8–10 टन प्रति हैक्टेयर तथा असिंचित क्षेत्र में 4–5 टन प्रति हैक्टेयर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद बुवाई के करीब एक माह पूर्व खेत में डालकर जुताई से अच्छी तरह मिला दें। गोबर की खाद 10 टन प्रति है0 के हिसाब से बुवाई से एक महीने पहले मिट्टी में मिलाने से हम 25 प्रतिशत अनुमोदित उर्वरक दर को कम कर सकते है।

(3) **जैव उर्वरक**– जैव उर्वरक विशिष्ट प्रकार के जीवाणुओं का एक विशेष प्रकार के माध्यम, चारकोल, मिट्टी या गोबर की खाद में ऐसा मिश्रण है जो कि वायुमण्डलीय नत्रजन को चागिकीकरण द्वारा पौधों को उपलब्ध कराती है या मिट्टी में उपलब्ध अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित करके पौधों को उपलब्ध कराता है। जैव उर्वरक रसायनिक उर्वरकों का विकल्प तो नहीं है परन्तु पूरक अवश्य है। इनके प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों की 1/3 मात्रा तक की बचत हो जाती है।

फास्फोरस घोलक जीवाणु खाद एवं एजोटोबेक्टर जीवाणु खादों से बीजोपचार लाभदायक है क्योंकि इनसे क्रमशः फॉस्फोरस एवं नत्रजन की उपलब्धता बढ़ती है और उपज में वृद्वि होती है।

जैविक खादों एवं जैव उर्वरकोंद्वारा उर्वरकों के समतुल्य पोषक तत्व।

सामग्री	निवेश की मात्रा	उर्वरकों के रूप में पोषक तत्वों की समतुल्य मात्रा
जैविक खादें एव फसल अवशेष गोबर की खाद	प्रति टन	3.6 किग्रा. नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश (2:1:1)
ढैचा की हरी खाद	45 दिन की फसल	50–60 किग्रा. नाइट्रोजन (बौनी जाति के धान में)
गन्ने की खोई	5 टन प्रति हेक्टेयर	12 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति टन
धान की पुआल, जलकुम्भी	5 टन प्रति हेक्टेयर	2 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति टन
जैव उर्वरक राइजोबियम कल्चर	–	19–22 किग्रा. नाइट्रोजन
एजोटोबैक्टर एवं कल्चर एजोस्पाइरिलम	–	20 किग्रा. नाइट्रोजन
नील हरित शैवाल	10 किग्रा. प्रति हेक्टेयर	20–30 किग्रा. नाइट्रोजन
एजोला फर्म	6–21 टन प्रति हेक्टेयर	3–5 किग्रा. प्रति हेक्टेयर

जैव उर्वरकों की प्रयोग विधि

1) **बीज उपचार विधि**– जैव उर्वरकों के प्रयोग की यह सर्वोत्तम विधि है। आधा लीटर पानी में लगभग 50 ग्राम गुड़ या गोंद उबालकर अच्छी तरह मिलाकर घोल बना लेते है इस घोल को 10 किग्रा. बीज पर छिड़क कर मिला देते हैं जिससे प्रत्येक बीज पर इसकी परत चढ़ जाये। तब जैव उर्वरक को छिड़क कर मिला दिया जाता है। इसके उपरान्त बीजों को छायादार जगह में सुखा लेते हैं। उपचारित बीजों की बुवाई सूखने के तुरन्त बाद कर देनी चाहिए।

2) **पौध जड़ के उपचार विधि**– धान तथा सब्जी वाली फसलें जिनके पौधों की रोपाई की जाती है जैसे टमाटर, फूलगोभी, पातगोभी, प्याज इत्यादि फसलों में पौधों की जड़ों को जैव उर्वरकों द्वारा उपचारित किया जाता है। इसके लिए किसी चौड़े व छिछले बर्तन में 5–7 लीटर पानी में एक किलोग्राम जैव उर्वरक मिला लेते है। इसके उपरान्त नर्सरी से पौधों को उखाड़कर तथा जड़ों से मिट्टी साफ करने के पश्चात् 50–100 पौधों को बण्डल में बांधकर जीवाणु खाद के घोल में 10 मिनट तक डुबो देते हैं। इसके बाद तुरन्त रोपाई कर देते है।

3) **कन्द उपचार की विधि**– गन्ना, आलू, अदरक, घुइया जैसे फसलों में जैव उर्वरकों के प्रयोग हेतु कन्दों को उपचारित किया जाता है। एक किलोग्राम जैव उर्वरक को 20–30 लीटर घोलकर मिला लेते हैं। इसके उपरान्त कन्दों को 10 मिनट तक घोल में डुबोकर रखने केपश्चात बुवाई कर देते है।

4) **मृदा उपचार की विधि**– 5–10 किलोग्राम जैव उर्वरक 70–100 किग्रा० मिट्टी या कम्पोस्ट का मिश्रण तैयार करके अन्तिम जुताई पर खेत मिला देते है।

राई–सरसों के लिए उपयोगी जीवाणु खाद

राई–सरसों फसल के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता बढाने में दो जीवाणु खाद महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं–एजोटोबैक्टर तथा फास्फोरस घोलक जीवाणु। एजोटोबैक्टर जीवाणु खाद वायुमंडलीय नत्रजन को परिवर्तित कर पौधों उपलब्ध कराते हैं। इसके प्रयोग से औसतन 10–15 किग्रा नत्रजन प्रति हैक्टेयर परिवर्तित होकर पौधों को उपलब्ध होती है। यह जीवाणु बीज के अंकुरण तथा पौधे की बढवार में सहायक होने के साथ–साथ भूमि में अनेकों रोगकारी कवकों की वृद्धि को नियंत्रित करता है। इस जीवाणु की मृत कोशिकाएँ भूमि में कार्बनिक पदार्थ में वृद्धि करते हैं। एजोटोबैक्टर से बीजोपचार के लिए इसके 50 ग्राम मिश्रण को आवश्यकतानुसार पानी में घोलकर एक हैक्टेयर के लिए आवश्यक बीजों में छाया में मिलाऐं। यदि भूमि उपचार करना है तो इसके 1500 ग्राम मिश्रण को 125 किलोग्राम पकी गोबर की खाद में छाया में समान रुप से मिलाकर अंतिम जुताई के पूर्व खेत में बिखेर दें।

फास्फोरस घोलक जीवाणु भूमि में अघुलनशील अवस्था में स्थित फास्फोरस को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित कर पौधों के ग्रहण करने योग्य बनाते हैं जिससे फास्फोरस की उपलब्धता बढती है फलस्वरूप उत्पादन बढता है। फास्फोरस घोलक जीवाणु से बीजोपचार के लिए इसके 50 ग्राम मिश्रण को आवश्यकतानुसार पानी में घोलकर एक हैक्टेयर के लिए आवश्यक बीजों में मिलाऐं। उपचारित बीज को 10 मिनट तक छाया में सुखाकर तुरंत बुवाई के काम में लेवें। यदि भूमि उपचार करना है तो इसके 4 किग्रा मिश्रण को 125 किलोग्राम पकी हुयी गोबर की खाद में अच्छी तरह मिलाकर समान रुप से खेत में मिला दें। इसके बाद तुरंत सिंचाई कर दें। इसके प्रयोग से औसतन 50 प्रतिशत तक फास्फेटिक खाद की बचत की जा सकती है।

केंचुआ खाद का फसल उत्पादन में महत्व

केंचुआ प्राचीन काल से ही किसान का मित्र रहा है। केंचुआ खेत में उपलब्ध अध–सड़े–गले कार्बनिक पदार्थो को खाकर अच्छी गुणवत्ता की खाद तैयार करते रहते है। यह मृदा में जीवाणुकवक, प्रोटोजोआ, एक्टिनोमाइसिटीज आदि की अपेक्षित वृद्धि में भी सहायक होते हैं। आज से 25–30 वर्ष पूर्व हमारी भूमियों में केंचुआ काफी संख्या में जाये जाते थे, किन्तु आज बागों, तालाबों में ही केंचुआ रह गया है। केंचुओं की दिन प्रतिदिन घटती जा रही संख्या के कारण ही भूमि उर्वरता में कमी आती जा रही है। शायद यही करण है कि जैविक एवं टिकाऊ कृषि में पुनः केंचुआ खाद याद आ रही है। जैसा की आप जानते हैं की गोबर की खाद का अभाव होने से इसका प्रयोग बहुत कम हो गया है। इस परिस्थिति में हमें केचुआ की खाद पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। केंचुआ की खाद में गोबर की खाद से 5 गुना नत्रजन, 6 गुना फास्फोरस व 11 गुना पोटाश अधिक होती है। इसकी मात्रा गोबर की खाद की मात्रा से आधी डालनी चाहिए।

केंचुआ खाद का उद्देश्य

- गोबर एवं कूड़ा–कचरा को खाद के रूप में बदलना।
- रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग में कमी लाना।
- भूमि की उर्वरता शक्ति बनाये रखना।
- उत्पादन में आयी स्थिरता को समाप्त कर उत्पादन

बढ़ाना।

- उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार लाना।
- भूमि कटाव को कम करना तथा भूमिगत जल स्तर में बढ़ोत्तरी।
- बेरोजगारी को कम करना।
- भूमि में पाए जाने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं को बढ़ाना।
- भूमि में जल धारण क्षमता में वृद्धि करना।

वर्मी कम्पोस्ट के लाभ

- मृदा के भौतिक तथा जैविक गुणों में सुधार होता है ।
- मृदा संरचना तथा वायु संचार में सुधार हो जाता है।
- नाइट्रोजन स्थरीकरण करने वाले जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है ।
- कूड़े कचरे से होने वाले प्रदूषण पर नियंत्रण होता है ।
- वर्मी कम्पोस्ट एक लघु कुटीर उद्योग के रूप में रोजगार के नये अवसर प्रदान करता है।
- फलों सब्जियों तथा खाद्यान्नों की गुणवत्ता बढ़ती है तथा उनके उपज में भी वृद्धि होती है ।
- यह रसायनिक उर्वरक की खपत कम करके मृदा स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने का प्रभावी उपाय है।

फसल का नाम	वर्मी कम्पोस्ट टन में प्रति एकड
दलहनी एवं खाद्यान फसल	2 टन बुवाई से पूर्व
तिलहनी फसल	3 टन बुवाई से पूर्व
मसाला एवं सब्जी फसल	4 टन बुवाई से पूव
फूल वाली फसल	5 टन बुवाई से पूर्व
फलदार पौधों में रोपण के समय	5 किग्रा / वृक्ष
गमलों में	मिट्टी के भार का 10 प्रतिशत
लान में	2 किग्रा० प्रति वर्गमीटर

हरी खाद एवं उसकी उपयोगिता दृमिट्टी की उर्वरा शक्ति में वृद्धि हेतु पौधों के हरे वानस्पतिक को उसी खेत में उगाकर या दूसरे स्थान से लाकर खेत में मिला देने की क्रिया को हरी खाद देना कहते है।

हरी खाद प्रयोग करने की विधियां–

(क) उसी खेत में उगाई जाने वाली हरी खाद– जिस खेत में खाद देनी होती हैं,उसी खेत में फसल उगाकर उसे मिट्टी पलटने वाले हल से जोतकर मिट्टी में मिलाकर किया जाता है। इस विधि से हरी खाद तैयार करने के लिए सनई, ढैंचा, ग्वार,मूंग, उर्द आदि फसलें उगाई जाती हैं।

(ख) खेत में दूर उगाई जाने वाली हरी खाद–जब फसलें अन्य दूसरे खेतों में उगाई जाती हैं। और वहां से काटकर जिस खेत में हरी खाद देना होता है, उसमें मिट्टी पलटने वाले हल से जोतकर दबा देते हैं। इस विधि में जंगलों या अन्य स्थान पर उगे पेड़ पौधों एवं झाड़ियों की पत्तियों टहनियों आदि को खेत में मिला दिया जाता हैं। हरी खाद हेतु प्रयोग की जाने वाली फसलें सनई, ढैंचा,मूंग, उर्द, मोठ, ज्वार, लोबिया, जंगली, नील बरसीम एवं सैंजी आदि।

हरी खाद से लाभ–हरी खाद से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा से भौतिक दशा में सुधार होता है। नाइट्रोजन की वृद्धि हरी खाद के लिए प्रयोग की गई दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रन्थियां होती है। जो नत्रजन का स्थिरीकरण करती हैं। फलस्वरूप नत्रजन की मात्रा में वृद्धि होती है।एक अनुमान लगाया गया है कि ढैंचा को हरी खाद के रूप में प्रयोग करने से प्रति हेक्टेयर 60 किग्रा० नाइट्रोजन की बचत होती है । तथा मृदा के भौतिक रासायनिक तथा जैविक गुणों में वृद्धि होती है, जो टिकाऊ खेती के लिए आवश्यक है।

पोषक तत्वों की पूर्ति सभी उपलब्ध संसाधनों के समन्वय के द्वारा करें। इस बात को समझने के लिए आवश्यक है कि किसी एक पोषक तत्व की पूरी मात्रा की पूर्ति केवल एक उर्वरक द्वारा नहीं करनी है। लगातार एक ही तरह के उर्वरकों का इस्तेमाल करते रहने के कारण मृदा में लवणीयता, क्षारीयता आदि समस्याएं पैदा हो गयी हैं और मृदा की उत्पादकता में गिरावट आ गयी है। उदाहरण के लिए नत्रजन तत्व की पूर्ति केवल यूरिया डालकर भी की जा सकती है। लेकिन ऐसा करने से मृदा के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। धीरे – धीरे मृदा की उत्पादन क्षमता कम हो जाती

है इसलिए मृदा की उत्पादन क्षमता को बढ़ाना है तो फसल की पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए हमें कार्बनिक अकार्बनिक तथा जैव संसाधनों को तर्क संगत तरीके से उपयोग में लाना होता है। फसलों के सम्पूर्ण विकास के लिए कुल 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है इनमे से तीन पोषक तत्व कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन हवा तथा जल से प्राप्त होते हैं तथा अन्य पोषक तत्व यथा नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश कैल्शियम, मैग्नेशियम, सल्फर, आयरन, मेगनीज, जिंक, कॉपर, बोरान, मोलिब्डेनम व निकिल पौधे मृदा से प्राप्त कर लेते हैं। मृदा में इन सभी पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध होनी चाहिए। इन पोषक तत्वों में से यदि एक भी पोषक तत्व की कमी या अधिकता हो जाये तो भूमि में फसलों की खुराक असंतुलित हो जाती है। इसलिए इन सभी आवश्यक पोषक तत्वों की समानुपातिक मात्रा को बनाये रखने के लिए मृदा में खाद एवं उर्वरक डालने की जरुरत पड़ती है। इस प्रकार मृदा में पोषक तत्वों की आपूर्ति कर खुराक को संतुलित किया जाता है। फसलों में संतुलित मात्रा देने के लिए सर्वप्रथम मिट्टी की जांच आवश्यक है क्योंकि फसल को कितनी मात्रा में पोषक तत्वों की आवश्यकता है तथा मृदा में इन पोषक तत्वों की कितनी उपलब्धता है इन सभी प्रश्नों के समाधान के लिए ही मिट्टी की जांच करना आवशयक है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन एक ऐसी विधि है जिसमें का कार्बनिक, अकार्बनिक और जैविक स्रोतों के मिश्रित उपयोग द्वारा पौधों को उचित मात्रा में पोषक तत्व उपलब्ध करवाये जाते हैं। इसके मुख्य उद्देश्य उर्वरक उपयोग क्षमता को अधिक करना, मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों को बढ़ाना आदि से सम्बन्धित रहते हैं ताकि लबे समय तक स्थाई कृषि द्वारा अधिक उत्पादन लिया जा सकेद्य एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन, तकनीकी रूप से परिपूर्ण, आर्थिक रूप से आकर्षक, व्यावहारिक रूप से सम्भव और पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित होना अनिवार्य है।

❑❑❑

करै खेत की जब तैयारी, ऊपर वरसै वर्षा भारी।
फिर भी कभी ना हिम्मत हारी, मां वसुन्धरा की तू गोद में, काम करै धरि ध्यान
तेरी जय हो वीर किसान।।

कैसे फसलों में उर्वरक उपयोग क्षमता बढायें

रमेश चन्द्र साँवल[1], चेतन कुमार दौतानियाँ[1], छुट्टन लाल मीणा[2]
[1]मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, कृषि महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
[2]भा.कृ.अनुप. – केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राज.)

उर्वरक उपयोग क्षमता से तात्पर्य है कि प्रयोग किये गये उर्वरक से कम से कम पोषक तत्वों की हानि हो और फसल उर्वरकों का अधिक से अधिक उपयोग करके अधिकतम उपज दे। उर्वरक उपयोग क्षमता, उर्वरकों के प्रयोग करने की विधियों, उर्वरकों की मात्रा व उर्वरकों के प्रयोग करने का समय आदि पर बहुत निर्भर करती हैं। मृदा की किस्म एवं गुण, जलवायु सम्बन्धी कारक जैसे तापमान व वर्षा, फसल की किस्म व अनेक कृषि क्रियाओं द्वारा भी उर्वरक उपयोग क्षमता प्रभावित होती है। मृदा में नमी की मात्रा भी विशेष रूप से उर्वरक उपयोग क्षमता पर प्रभाव ड़ालती है।

उर्वरक उपयोग क्षमता बढ़ाने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखें –

मृदा आधारित उर्वरकों का चयन

- मृदा परीक्षण करा लीजिए – जिस भूमि में जिस तत्व की कमी हो, उस भुमि में उसी तत्व के उर्वरकों या लवणों का प्रयोग करें।
- नम क्षेत्रों में साधारणतया कैलशियम व मैग्नीशियम तत्वों की कमी होती है अतः इनके यौगिक डालें।
- अम्लीय भूमियों में नाइट्रोजन के उर्वरक अपेक्षाकृत अधिक होना चाहिये तथा ऐसे उर्वरक प्रयोग करें जो भूमि पर अपना क्षारीय प्रभाव छोड़ें। ऐसी भूमियों में फास्फोरस की पूर्ति के लिएसाइट्रेट में घुलनशील, फास्फेटिक उर्वरकों का प्रयोग करें।
- लवणीय मृदाओं से ऐसे उर्वरकों का प्रयोग करें जो अपना अवशेष प्रभाव अम्लीय छोड़ते हों। उन क्षारीय भूमियों में जहाँ पर कैलशियम कार्बोनेट की मात्रा अधिक हो, पानी में घुलनशील फास्फेटिक उर्वरकों का प्रयोग फास्फोरस देने के लिए करें।
- रेतीली मृदाओं में पोषक तत्वों की हानि को रोकने के लिए जैविक खाद (गोबर व कम्पोस्ट, खलियॉ आदि) प्रयोग करें व नाइट्रोजन के उर्वरकों का घोल बनाकर खड़ी फसल पर छिड़काव करें।
- चिकनी भूमियों में चूने व जैविक खादों का प्रयोग करें।
- मध्यम व अधिक फास्फोरस चाहने वाली भूमियों में, साइट्रेट में घुलनशील, फास्फेटिक उर्वरकों का प्रयोग करें।
- जब भूमि में फास्फोरस की बहुत अत्यधिक कमी हो या मृदा उर्वरता में वृद्धि करनी हो तो पानी में घुनलशील उर्वरकों का प्रयोग करें।
- जिन फास्फेटिक उर्वरकों में 60 प्रतिशत पानी में घुलनशील व 40 प्रतिशत साइट्रेट में घुलनशील फास्फोरस होता है, उनके प्रयोग से उर्वरक उपयोग क्षमता बढ़ती है।
- खेत में जो फसल उगाने जा रहे हैं उससे पहले कौनसी फसल (दलहन या अदलहन) कौन सा खाद कितनी मात्रा में दिया गया था, खेत खाली था या नहीं आदि बातें ध्यान में रखकर, खाद व उर्वरकों का चयन करें।
- फसल की किस्म जैसे – कन्द वाली, अन्न वाली, गन्ना, तम्बाकू और फसलों की प्रजातियों के अनुसार पोषक तत्वों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, खाद उर्वरकों का प्रयोग करें।
- जिनफसलों को 60 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर या इससे कम फास्फोरस की आवश्यकता हो या कम अवधि की फसल हो या तेजी से बढ़वार करने वाली फसल हो तो पानी में घुलनशील फास्फेटिक उर्वरकों का प्रयोग करें। दलहन फसलों व अधिक अवधि की फसलों में साइट्रेट में घुलनशील, फास्फेटिक उर्वरकों का प्रयोग करें।
- दलहन फसलों में मुख्यतया फास्फोरस, अनाज वाली व गन्ने की फसल में नाइट्रोजन फास्फोरस व सब्जी वाली फसलों में तीनों मुख्य तत्वों को रखने वाले खाद व उर्वरक प्रयोग करने चाहिये।
- लम्बी अवधि की फसलों में ऐसे खाद या उर्वरकों का प्रयोग करें जो फसलों को धीरे–धीरे पोषक तत्व प्रदान करते रहें। कम अवधि की फसलों को ऐसे उर्वरक दीजिए जिन से पोषक तत्व फसलों को शीघ्र प्राप्त हो जायें।
- जिन क्षेत्रों में कम वर्षा हो या जिन भूमियों में नमी की कमी हो, तो वहाँ पर उन उर्वरकों का प्रयोग करें

जिनसे पोषक तत्व पौधों को शीघ्र प्राप्त हो जायें जैसे नाइट्रोजन उर्वरक जो नाइट्रेट रूप में नाइट्रोजन रखते है व पानी में घुलनशील फास्फेटिक उर्वरक, मृदा में उर्वरक उपयोग क्षमता बढ़ाते है। सिंचित या कम वर्षा वाले क्षेत्रों में नाइट्रोजन के वे उर्वरक प्रयोग करें जो अमाइड व अमोनिकल रूप में नाइट्रोजन रखते है। जैविक खादों का प्रयोग इन क्षेत्रों में विशेषतयाः लाभदायक हैं।

- मृदा संरचना में चिकनी मिट्टी की मात्रा बढ़ने पर सभी सूक्ष्म तत्वों की मात्रा बढ़ती है।
- लवणीय मृदा का पी.एच. मान कम करके, जस्ते, मैंगजीन व लोहे की उपलब्धता पौधों को बढ़ा सकते हैं।
- नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटश को संयुक्त रूप में देने से अधिक लाभ हैं अर्थात एक उर्वरक के प्रयोग से फसलें पोषक तत्वों का उपयोग भली–भांति नहीं कर पातीं।

(2) खाद या उर्वरकों का प्रयोग करने का समय

- दलहनी फसलों, कम अवधि की फसलों में सभी मुख्य उर्वरक बुवाई के समय ही खेत में देने चाहिए।
- खड़ी फसल पर, किसी पोषक तत्व विशेष की कमी के लक्षण दिखाई देने पर, उसी समय उस तत्व के लवण का घोल, मानक स्तर अनुसार तैयार करके, छिड़क देना चाहिए।
- रेतीली भूमियों में नाइट्रोजन की हानि को कम करने के लिए, बुवाई के समय व खड़ी फसल में, फसल अवधि के अनुसार कई बार में नाइट्रोजन की पूर्ति फसल के वृद्धि के अनुसार की जाती है।
- सूक्ष्म तत्वों के घोल का खड़ी फसल में छिड़काव, तत्वों की उपयोग क्षमता में वृद्धि करता है।
- भूमि में नमी की कमी या शुष्क क्षेत्रों में, फसल के तत्वों (जैंसे यूरिया) आदि का घोल बनाकर, फसल पर छिड़कने से उर्वरक उपयोग क्षमता बढ़ती हैं।
- पोटाशिक व फास्फेटिक उर्वरक बुवाई के समय ही खेत में देने चाहिए।
- सिंचित क्षेत्र में नाइट्रोजन के आमाइड व अमोनिकल उर्वरकों का खड़ी फसल में कई बार में प्रयोग करें।
- नाइट्रोजन के उर्वरक फसल की अवधि के अनुसार फसल के वृद्धि काल तक दे देने चाहिये। 4–5 माह की अवधि वाली फसल में नाइट्रोजन 2–3 बार में, 9–12 माह की अवधि वाली फसल में कुल नाइट्रोजन 3–4 बार में, गन्ने की अधसाली (डेढ़ वर्ष वाली) साल में कुल नाइट्रोजन 4–5 बार में, खड़ी फसल में दी जाने से, उर्वरक उपयोग क्षमता बढ़ती है।
- जैविक खाद (गोबर, कम्पोस्ट व हरी खाद) को फसलों में बोने से एक माह पहले एवं खलियों को बुवाई से 15 दिन पहले भूमि में देने से पोषक तत्वों का उपयोग करने से फसलें अच्छी पैदावार देती हैं।

(3) खाद एवं उर्वरकों को दी जाने वाली मात्रा

- मृदा परीक्षण कराकर, मालूम कर लेना चाहिए कि कौन–कौन से तत्व, कितनी मात्रा में भूमि में उपलब्ध है। बोई जाने वाली फसल की आवश्यकता को ध्यान में रखकर, शेष मात्रा खाद व उर्वरकों द्वारा पूरी करें।
- खाद व उर्वरकों की मात्रा निर्धारित करते समय, फसल की किस्म, फसल उगाने का उद्देष्य, फसल चक्र, भूमि की किस्म, भूमि में नमी की मात्रा, मृदा समूह, मृदा कटाव, मौसम जलवायु, खेत में खरपतवारों का प्रकोप, खाद का प्रकार, खाद देने का समय व विधि आदि बातों का ध्यान रखना आवश्यक है ताकि उगाई जाने वाली फसलों को उसकी आवश्यकता के अनुसार ही पोषक तत्व दिये जायें जिससे कि उर्वरकों एवं खादों की उपयोग क्षमता बढ़ा सकें।

(3) खाद एवं उर्वरकों को देने की विधियाँ

- मृदा में पोषक तत्वों जैसे फास्फोरस, पोटेशियम कैलशियम, मैग्नीशियम, लोहा व जस्ता को सदैव पोधों की जड़ों के पास डालना चाहिए। पौधों की जडें बढ़कर, इन तत्वों को ग्रहण कर लेती है।
- बुवाई के समय दिये जाने वाले सभी फास्फेटिक, पोटाशिक व नाइट्रोजन के उर्वरकों को बीज से 3–5 सेन्टीमीटर बगल में व बीज से 3–4 सेन्टीमीटर गहराई पर सीडड्रिल या हल द्वारा करने से सभी तत्वों का अधिकतम उपयोग होता है।
- खड़ी फसल में दिये जाने वाले उर्वरकों, भूमि में न देकर पौधों की पत्तियों पर घोल के रूप में छिड़कने से, उर्वरक उपयोग क्षमता में भारी वृद्धि होती है। इस विधि से उर्वरक देने पर, भूमि में होने वाली तत्वों की हानि लीचिग, स्थिरीकरण, जल–मग्न भूमियों में डिनाइट्रीफीकेशन, लवणीय भूमियों में नाइट्रोजन का

गैस में उड़ना आदि को बचाया जा सकता है।

- शुष्क क्षेत्रों व असिंचित क्षेत्रों में तत्वों का घोल छिड़ककर, उपयोग क्षमता में वृद्धि कर सकते है।

(5) उर्वरक उपयोग क्षमता बढ़ाने के लिये ध्यान में रखने योग्य अन्य बातें

- धान–गेहूँ के फसल चक्र में गेहूँ में उर्वरक सिफारिश के अनुसार डालना चाहिए व आने वाली धान की फसल में फास्फोरस व पोटाश की मात्रा नहीं देनी चाहिये।
- रबी की फसलों के बाद जब गर्मियों में दलहन फसलें ली जाती है तो दीजिए व अगर इसके बाद खरीफ में धान की फसल लेनी है तो फास्फोरस व पोटाश देने की आवश्यकता नहीं है।
- खरीफ में अगर हरी खाद की फसल खेत में ली गई है, खेत में हरी खाद की फसल की बुवाई सन्तोषजनक है और समय पर हरी खाद की फसल खेत में दबाई गई है तो रबी की बोई जाने वाली फसल में नाइट्रोजन की 40 किलोग्राम मात्रा प्रति हैक्टेयर की दर से कम कर सकते है।
- गोबर की खाद या कम्पोस्ट का प्रयोग अगर खेत में किया गया है तो आगामी बोई जाने वाली फसल में नाइट्रोजन 5 किलोग्राम, फास्फोरस 2.5 किलोग्राम व पोटाश 2.5 किलोग्राम, प्रति टन गोबर या कम्पोस्ट के हिसाब से, फसल के लिये, सिफारिश की गई नाइट्रोजन फास्फोरस व पोटाश की कुल मात्रा से कम कर देनी चाहिये।
- धान की फसल में नाइट्रोजन की लीचिंग व डीनाइट्रीफीकेशन द्वारा होने वाली हानि को रोकने के लिए खेत में नाइट्रोजन के नाइट्रेट उर्वरकों का प्रयोग मत कीजिए।
- फास्फेटिक व पोटाशिक उर्वरक बुवाई के समय खेत में देने चाहिए। नाइट्रोजन के उर्वरक तीन–चार बार में भूमि के प्रकार, जलवायु व फसल की किस्म आदि के अनुसार देने चाहियें।
- हल्की व भारी भूमियों में अधिकतर कार्बनिक खाद जैसे कम्पोस्ट व गोबर की खाद का प्रयोग करना चाहिए। इससे भूमि में सूक्ष्म तत्वों का स्तर भी बना रहता है।
- मुख्य उर्वरकों से अधिकतम लाभ उठाने के लिए अगर भूमियों में किसी सूख्म तत्व की कमी हो तो उसकी पूर्ति करनी चाहिये। रेतीली, लवणीय, कम जीवांश वाली भूमियों में आमतौर पर सूक्ष्म तत्वों की कमी होती है।
- क्षारीय भूमियों, खड़ी फसल में बिखेरे गये नाइट्रोजन के उर्वरकों को हल्की निराई–गुडाई करके भूमि में मिला देना चाहिये। यह सक्रिय अमोनिया के रूप में होने वाली नाइट्रोजन की हानि को कम करेगी।
- पोषक तत्वों का असन्तुलन भूमि में रोकना चाहिये ताकि पौधे अपनी आवश्यकतानुसार सभी पोषक तत्व भूमि से ले सके। भूमि का परीक्षण कराकर पोषक तत्वों की मात्रा सन्तुलित की जा सकती है।
- खरपतवारों का नियन्त्रण फसल बोने के 7–35 दिन के अन्दर अर्थात प्रारम्भिक अवस्था में होना चाहिये अन्यथा पोषक तत्व (25–30 प्रतिशत तक) खरपतवार के द्वारा भूमि से अवशोषित कर लेते हैं।
- फसल की किस्म की उचित समय पर बुवाई उर्वरक उपयोग क्षमता को बढ़ाती है। उस किस्मों को देर से बुवाई करने पर उर्वरक उपयोग क्षमता घट जाती है।
- मक्का व तिलहन फसलों में प्रति इकाई क्षेत्र, पौधों की कम संख्या व बीमारियों से प्रभावित बीजों का बोना भी उर्वरक उपयोग क्षमता को कम करता है।
- फसल की कीट–पतंगों व बीमारियों से सुरक्षा करके भी उर्वरक उपयोग क्षमता बढ़ा सकते है।
- असिचिंत फसलों की तुलना में सिंचित फसलों की पैदावार उर्वरक के उपयोग से बढती है अतः फार्म पर प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष मिलने वाले पानी की मात्रा के अनुसार फसलों का चयन कर, उर्वरक उपयोग क्षमता में वृद्धि कर सकते है।
- अनुसंधान के आधार पर यह पाया गया है कि फसलों की क्षेत्रीय जातियों की तुलना में, अधिक उपज देने वाली जातियों में कम उर्वरकों के प्रयोग पर भी अधिक उपज देती है अतः उर्वरक उपयोग क्षमता बढ़ाने के लिये सदैव अधिक उपज देने वाली जातियाँ ही बोनी चाहिये।
- फसलों में पंक्ति से पंक्ति व पौधों से पौधे की उचित दूरी रखने पर उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।

❑❑❑

फसलोत्पादन में जैविक खाद का महत्व

प्रशांत यादव, अरुण कुमार, हरि सिंह मीना
भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

जैविक या कार्बनिक खाद के अन्तर्गत वे पदार्थ आते हैं जो पशु पक्षियों के मल–मूत्र या शरीर के अवशेष से अथवा पेड़–पौधों से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार की खादों के प्रयोग से मिट्टी की भौतिक अवस्था में सुधार होता है, मृदा में ह्यूमस का निर्माण होता है तथा सूक्ष्म जीवियों के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण बनता है। जैविक खाद में पोषक तत्व सामान्यतः अनुपलब्ध अवस्था में रहते हैं परन्तु खेत में डाले जाने के बाद सूक्ष्मजीवियों के क्रिया–कलापों के द्वारा धीरे–धीरे वे उपलब्ध होने लगते हैं। जैविक खाद विभिन्न प्रकार से बनाई जा सकती है।

गोबर खाद –भारत में प्रयोग में आने वाली सभी जैविक खादों में यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। पशुओं के मलमूत्र का महत्व तो आदिकाल से भारत के किसानों को ज्ञात रहा है, परन्तु इस देश का दुर्भाग्य है कि आज भी करीब 60 प्रतिशत गोबर जलाने के काम आता है एवं खाद के रूप में प्रयोग होने वाला गोबर इस ढंग से रखा जाता है कि इसमें निहित पोषक–तत्व बड़ी मात्रा में नष्ट हो जाते हैं। आम तौर से किसान अपने खेत में फार्मयार्ड खाद की ढेरी लगाता है। खाद की ढेरी वर्षा या धूप के प्रभाव से बची नहीं रहती और इसका परिणाम यह होता है कि प्रचुर मात्रा में पोषक–तत्व नष्ट हो जाते हैं। यह कहा जा सकता है कि कुछ महीने में औसत रूप से 50 प्रतिशत पोषक–तत्व नष्ट हो जाते हैं। अपघटन के कारण काफी मात्रा में अमोनिया वाष्पीकृत होकर निकल जाती है, जिससे नत्रजन की मात्रा बहुत कम रह जाती है। पशुओं के मूत्र के संरक्षण का भी कोई प्रबंध नहीं किया जाता है। बयान खाद में निहित पोषक तत्वों की मात्रा पशुओं के प्रकार, पशुओं के चारे, पशुओं की उम्र तथा खाद को रखने के ढंग आदि पर निर्भर करती है। इस प्रकार की खाद बनाने के लिए प्रतिदिन सुबह में गोबर एवं मूत्र से सनी बिचाली को अच्छी तरह मिलाकर एक 7 फुट लम्बी एवं 6 फुट चौड़ी तथा 3.5 फुट गहरी खाई में डाल देते हैं। जब खाद की ढेरी जमीन से डेढ़ फुट ऊंची हो जाये तो उसे गोबर मिट्टी से पीसकर पुनः आगे खाई भरते हैं। सामान्यतः एक खाई में खाद भरने के बाद दूसरी खाई में खाद भरना शुरू कर देते हैं। इस विधि से औसतन प्रति जानवर करीब 5–6 मैट्रिक टन खाद तैयार की जा सकती है। सड़ने–गलने के बाद जानवरो का मल–मूत्र एवं बिचाली प्रक्षेत्रांगन या बयान खाद के रूप में परिवर्तित हो जाती है। सड़ने गलने की इस प्रक्रिया में बहुत से जीवाणु (कवक, बैक्टीरिया एवं एक्टिनोमाइसिटीज) भाग लेते हैं। इन जीवाणुओं में कुछ वायुजीवी होते हैं और कुछ अवायुजीवी। प्रक्षेत्रांगन या बयान खाद तैयार करने की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कैसे इन जीवाणुओं के लिए अनुकूल परिस्थिति पैदा की जाये। बयान खाद तैयार करने की प्रक्रिया में सड़ने–गलने की क्रिया के दौरान मल–मूत्र एवं बिचाली का सामान्य पीला या हरा रंग बदलकर भूरा हो जाता है जो अंततः गहरा भूरा या काला हो जाता है। अच्छी तरह तैयार बयान खाद दुर्गन्ध रहित, ढीली, भुरी–भूरी तथा ह्यूमस के समान होती है।

प्रयोगों द्वारा इस बात की पुष्टि हुई है कि लम्बे समय तक खाद का प्रयोग करने से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ जाती है, तथा जल–स्थायी समुच्चय अधिक मात्रा में निर्मित होते हैं। इसके प्रभाव से मृदा में जल–रोधक शक्ति बढ़ती है, तथा पौधों में पोषक तत्वों की आपूर्ति अधिक होती है।

मित्र खाद या कम्पोस्ट खाद – इस प्रकार की खाद पेड पौधों की पत्तियों, जड़ों या अन्य किसी प्रकार के जैविक अवशेषों या मल, कूडा–कचरा एवं अन्य बेकार चीजों को खाद के ढेर में रखकर सड़ाने–गलाने से बनती है। इस क्रिया में पोषक तत्व इस रूप में बदल जाते हैं कि पौधे आसानी से उन्हें ग्रहण कर सके। कम्पोस्ट खाद तैयार करते समय इतनी गर्मी पैदा होती है कि मल–मूत्र, कूडा–कचरा, गंदा पानी आदि में रहने वाले हानिकर रोगाणु मर जाते हैं तथा निरापद एवं गंधरहित उत्तम खाद तैयार होती है। कम्पोस्ट खाद को तैयार करने की इंदौर विधि में सड़ाने–गलाने की क्रिया वायुजीवी जीवाणुओं द्वारा होती है जबकि बंगलौर विधि में वायुजीवी एवं अवायुजीवी दोनों प्रकार के जीवाणु कार्य करते हैं।

इंदौर विधि में वानस्पतिक अवशेषों की 15 सेमी. मोटी परते, एक के उपर रखते हुए करीब 1 मीटर ऊंची ढेरी तैयार कर लेते हैं तथा इस सामग्री को मिलाकर पशुओं के पैरों के पास डाल देते हैं। अगले दिन गोबर एवं मूत्र से सनी सामग्री को 1 मीटर लम्बे व 2.5 मीटर चौड़े गड्ढों में डाल देते हैं। तीन–चार बार खाद सामग्री को 15–15 दिन के अंतर पर उलट कर फिर इसमें पानी डाल देते हैं। इस प्रकार की खाद लगभग 3–4 माह में तैयार हो जाती है। इसमें निम्न कमियां हैं :–

- इस विधि से कंम्पोस्ट खाद तैयार करने में बहुत मेहनत करनी पड़ती है।
- खाद की ढेर तैयार करने, खाद–सामग्री के विभिन्न घटकों को यथानुपात रखने तथा खाद–सामग्री को उलट–पलट करने में बड़ी सावधानी बरतनी होती है।

- यह विधि कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त नहीं है।
- इस विधि से तैयार खाद हल्की होती है, जिसमें नाइट्रोजन एवं जैव पदार्थ की मात्रा कम होती हे।

बंगलौर विधि में 1 मीटर गहरी व 2.5 मीटर चौड़ी खाइयों में इंदौर विधि की तरह ही बिचाली को पशुओं के गोबर मूत्र से सानकर भरते हैं । इस विधि में पहले 7–8 दिनों तक वायुजीवी जीवाणु अपघटन किया करते हैं, तथा उसके पश्चात अवायुजीवी जीवाणु अपना कार्य करते हैं। इस विधि में खाद सामग्री की ऊपर से मिट्टे के गारे से पुताई करते हैं जिससे नमी कम नहीं होती है एवं सड़ने–गलने की क्रिया भीतर चलती रहती है। इस विधि से तैयार खाद में इंदौर विधि की अपेक्षा नाइट्रोजन एवं जैव पदार्थ अधिक मात्रा में होते हैं।

हरी खाद– हरी वनस्पति सामग्री को विशेषतः हरे फलीदार पौधों को उसी खेत में उगाकर अथवा कहीं अन्य स्थान से लाकर जुताई करके मिट्टी में दबा देने की क्रिया को ''हरी खाद'' डालना कहते हैं। इस प्रकार की जैविक खाद का प्रयोग करने से भूमि की उर्वरता में वृद्धि होती है। मिट्टी की अनुकूल अवस्था एवं उचित भू–प्रबंध के साथ भूमि में डाली गई हरी वनस्पति सड़–गलकर बहुत से लाभदायक प्रभाव छोड़ती है, जिससे भूमि की उर्वरता बढ़ाने में सहायता मिलती है। हरी खाद के प्रयोग से लवणीय एवं क्षारीय मिट्टियों में सुधार किया जा सकता है। हरी खाद के पौधे के कारण वाष्पोत्सर्जन की तुलना में वाष्पीकरण कम होता है, तथा मृदा जल से लवण का सतह पर आना रूक जाता है। हरी खाद की फसलों हेतु फलीदार एवं गैर फलीदार फसलों का प्रयोग किया जा सकता है। फलीदार पौधों की जड़ों में ग्रन्थियां होती हैं जिनमें स्थित राइजोबियम बैक्टीरिया वायुमण्डल से नाइट्रोजन लेकर मिट्टी को दे देते हैं। हरी खाद के लिए व्यवहार में आने वाली फसलों में सनई (*क्रोटोलेरिया जुन्शिया*) तथा ढेंचा (*सेस्बेनिया एक्यूलियेटा*) अधिक उपयोगी हैं। दोनों फसलें मानसून शुरू होने के पूर्व बो दी जाती है तथा तेजी से बढती है। इनके तनों के कड़े होने के पूर्व ही इन्हें जोतकर जमीन के अन्दर दबा देते हैं।

गैर फलीदार फसलों से भी काफी मात्रा में सामग्री मिट्टी में हरी खाद के रूप में प्राप्त होती है। इसी प्रकार अमतलास, आक, जैतां, टेफरोजिया, पौगामिया आदि वृक्षों एवं झाड़ियों से पत्तियां काटकर खेत में डालकर जुताई करने से पत्तियां मिट्टी में दब जाती हैं तथा विघटित होकर खाद का कार्य करती हैं। हरी खाद की फसलें तेजी से वृद्धि करने वाली और कम उर्वरा भूमि में बढ़ने की क्षमता वाली होनी चाहिए तथा उनमें प्रचुर मात्रा में रसदार (गूदेदार) तने की उपस्थिति भी आवश्यक है। ऐसी फसलें नाइट्रोजन के आपूर्ति तो फलीदार फसलों की तरह नहीं करतीं, पर काफी मात्रा में जैविक–सामग्री मिट्टी को प्रदान करती हैं।

हरी खाद से पूरा पूरा लाभ उठाने के लिए आवश्यक है कि हरी खाद डालने की तकनीक की पूरी जानकारी हो, क्योंकि इसके ऊपर ही हरी खाद की सफलता निर्भर करती है। हरी खाद वाली फसलों की बोआई का समय इस प्रकार निश्चित करना चाहिए कि मिट्टी में उस पौधों को दबाया जा सके, और आने वाली फसल के लिए जब अधिकाधिक पोषक–तत्व खेत में उपलब्ध हो सकें। पौधों के दबाने और अगली फसल के बोने के बीच इतना अंतराल होना चाहिए कि हरी खाद द्वारा प्रदत्त अधिकाधिक पोषक–तत्व अगली फसल को उचित समय पर मिल सके और कम से कम मात्रा रिसकर निकल सके।

खलियां – जैविक खाद के रूप में तिलहनी फसलों की खलियों का प्रयोग किया जा सकता है। तिलहनी फसलों के बीज में बडी मात्रा में प्रोटीन पाया जाता है। इन प्रोटीनों में 9 प्रतिशत नाईट्रोजन रहता है। तिलहनी फसलों के बीच से तेल निकालने के बाद बची खली नाइट्रोजनयुक्त खाद का कार्य कर सकती है। खलियों में उपस्थित पोषक तत्व जैविक यौगिकों के रूप में रहते हैं तथा खलियों का मिट्टी में विघटन होने पर भूमि को उपलब्ध हो जाते हैं। भिन्न–भिन्न खलियों के विघटन एवं नत्रजनीकरण में अलग–अलग समय लगता है। महुआ की खली का 8 सप्ताह पश्चात नाइट्रीकरण होता है जबकि मूंगफली व अंरडी की खली में उपस्थित नाइट्रोजन का नाइट्रीकरण 4–6 सप्ताह में ही हो जाता है। खलियों से पूर्ण लाभ लेने के लिए खली को चूरकर पाउडर बना कर बुवाई के पूर्व या खड़ी फसल में छींटकर प्रयोग करना उचित रहता है। साधारणतः खलियां मंहगी होने के कारण उनका प्रयोग जैविक खाद के रुप में कम ही होता है।

इन सभी प्रकार की जैविक खादों के अतिरिक्त कुछ सीमा तक हड्डी–चूर्ण, मछली की खाद आदि का प्रयोग भी जैविक या कार्बनिक खाद के रूप में होता है। मछली की खाद मछलियों को सुखाकर बनाते हैं तथा इसमें नाइट्रोजन 4 से 8 प्रतिशत एवं फॉस्फोरिक ऐसिड 3 से 8 प्रतिशत तक पाया जाता है। इस प्रकार की खाद बहुत जल्दी असर करती हैं तथा इसका प्रयोग समुन्द्र के तटवर्ती क्षेत्रों में ही होता है।

ग्वानो खाद – ग्वानों, समुद्री पक्षियों का मल होता है, जिसमें मरे हुए पक्षियों के अवशेष मिले होते हैं। उत्तरी एवं दक्षिणी अमरीकी महाद्वीपों के समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों के पास के द्वीपों में ग्वानों के भंडार पाये जाते हैं। प्रशांत महासागर के कुछ अन्य द्वीपों में ग्वानों की काफी मात्रा मिलती है। ग्वानों में 4 से 16 प्रतिशत तक नाइट्रोजन एवं 8 से 25 प्रतिशत तक फास्फोरिक एसिड रहती है। हांलाकि भारत में न कहीं यह खाद मिलती है और न ही इसका उपयोग होता है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की जैविक खादों से भूमि की उर्वरता बिना किसी हानिकारक प्रभाव के बढ़ाई जा सकती है।

जैव उर्वरक – प्रकार एवं उपयोग विधि

मुकेश कुमार मीणा, मुरलीधर मीणा, भीरू लाल मीना
भा.कृ.अनुप. – सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

एकीकृत पोषण प्रबन्ध पद्धति में रासायनिक उर्वरकों, जैव उर्वरकों एवं जीवांश खादों का प्रयोग ऐसे संतुलित अनुपात में किया जाता है जिससे कृषि उपज में वृद्धि के साथ–साथ भूमि और पर्यावरण पर रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते प्रतिकूल प्रभाव को कम किया जा सके। जैविक खेती में भी जैव उर्वरकों का काफी महत्व हैं, क्योंकि जैविक खेती में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग वर्जित है। ऐसी परिस्थिति में फसलोत्पादन में जैविक उर्वरक प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि जैविक उर्वरकों के उपयोग से प्राकृतिक संसाधनों से उचित जीवाणुओं के माध्यम से पौधों के लिए पोषक तत्व सुलभ करवाते हैं। जैव उर्वरक वास्तव में प्राकृतिक उर्वरक हैं जिनमें एक या अधिक जीवाणुओं की मिश्रित संरचनाओं का समावेश होता है, जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने की क्षमता रखते हैं एवं अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील बनाते है जो पौधों को सुगमता से उपलब्ध होता है। ये जैव उर्वरक वृद्धिकारक हार्मोन्स की आपूर्ति करने में भी सक्षम होते हैं।

जैव उर्वरकों के प्रकार

नाइट्रोजनयुक्त जैव उर्वरक – इन जैव उर्वरकों में ऐसे जीवाणु होते हैं जो वायुमण्डल से नाइट्रोज स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध करवाते हैं। नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जैव उर्वरक निम्न हैं–

- *राइजोबियम* – दलहनी फसलों के लिए।
- *एजोटोबेक्टर* – कपास, मक्का, गेहूँ, जौ, तिलहन, सब्जियाँ आदि के लिए।
- *एजोस्पिरिलम* – मक्का, चावल, गन्ना, ज्वार, बाजरा, सब्जियाँ आदि के लिए।
- नील हरित शैवाल व एजोला – धान की फसल के लिए।

फॉस्फोरस विलेयक जैव उर्वरक – इन जैव उर्वरकों में ऐसे जीवाणु होते हैं जो अघुलनशील फॉस्फोरस को विलेयशील बनाते हैं। फॉस्फोरस विलेयक जैव उर्वरक निम्न हैं–

- फॉस्फोरस विलेयशील सूक्ष्मजीव – सभी प्रकार की फसलों व सब्जियों के लिए।
- माइकोराइजा – वृक्ष, फलदार पौधों के लिए।

जैव उर्वरकों के लाभ – जैव उर्वरकों के उपयोग से होने वाले लाभ निम्नानुसार है –

- जैव उर्वरक पौधों को नाइट्रोजन व फॉस्फोरस की आपूर्ति करते हैं।
- ये पोषक तत्वों के सस्ते स्त्रोत हैं।
- कुछ जैव उर्वरक जैसे *एजोटोबेक्टर*, एजोला व नीलहरित शैवाल हार्मोन्स, विटामिन, आदि की स्त्राव करते है जिससे पौधों की वृद्धि पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।
- इनके उपयोग से फसलों की उपज में 10–20 प्रतिशत तक वृद्धि होती है।
- कुछ जैव उर्वरक एन्टीबायोटिक उत्पन्न करते हैं जिससे मृदा जनित रोगों का प्रभाव कम होता है।
- इनके उपयोग से मृदा की भौतिक अवस्था में सुधार होता हैं।
- नील हरित शैवाल व एजोला नाइट्रोजन के अतिरिक्त सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे लोहा, तांबा, मैंगनीज, जस्ता आदि उपलब्ध कराते हैं।

(क) नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जैव उर्वरक–

1. *राइजोबियम* – यह एक जीवाणु है जो दलहनी फसलों की जड़ों पर पाई जाने वाली ग्रन्थियों में रहता है। ये जीवाणु वायुमण्डल से नाइट्रोजन का अवशोषण कर उसका स्थिरीकरण करते है जो अन्ततः पौधों को उपलब्ध होती है। विभिन्न दलहनी फसलों के लिए भिन्न–भिन्न *राइजोबियम* की प्रजातियों के कल्चर काम में लिये जाते हैं।

सारणी– विभिन्न फसलों के लिए उपयुक्त राइजोबियम प्रजातियों का विवरण।

राइजोबियम प्रजाति	फसल
राइजोबियम मेलीलोटी	मेंथी, रिजका, सेंजी
राइजोबियम ट्राईफोलाई	बरसीम
राइजोबियम लेग्यूमिनोसेरम	मटर, मसूर
राइजोबियम फेसियोली	सेम
राइजोबियम जेपोनिकम	सोयाबीन
राइजोबियम लुपिनी	लुपिनी
राइजोबियम स्पीशीज	मूंगफली, मूंग, उड़द, चना, मोठ, अरहर

2. ***एजोटोबेक्टर*** – यह जीवाणु स्वतन्त्र रूप से मृदा में रहते है और वायुमण्डल से नाइट्रोजन ग्रहण कर उसका स्थिरीकरण करते हैं। इस जैव उर्वरक का प्रयोग गेहूँ, जौ, मक्का, सब्जियों आदि में किया जाता है।

3. ***एजोस्पिरिलम*** – यह जीवाणु भी मृदा में स्वतन्त्र रहकर वातावरणीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध करवाते हैं। इस जैव उर्वरक का उपयोग धान, ज्वार, गन्ना, बाजरा, सब्जियों आदि में किया जाता हैं।

नाइट्रोजनधारी जैव उर्वरकों की उपयोग विधि – नील हरित शैवाल तथा एजोला के अलावा सभी जैव उर्वरकों का निम्न प्रकार प्रयोग किया जाता है।

1. **बीज उपचार** – इस विधि में 1.5–2.5 लीटर पानी को गर्म करके उसमें गुड़ मिलाकर घोल तैयार करते हैं। घोल के ठण्डा होने पर उसमें 600 ग्राम (3 पैकेट) कल्चर मिलाते हैं। एक हैक्टर के लिए उपयोग में लाये जाने वाले बीजों को फर्श या पॉलिथीन शीट पर फैला लेते हैं। बीजों के ऊपर कल्चर के घोल को छिड़क कर भली–भाँति मिला लेते है जिससे बीजों पर जैव उर्वरक (कल्चर) के घोल की परत चढ़ जाये। उपचारित बीजों को छाया में सुखाकर बुवाई कर लेते है। बीज उपचार विधि जैव उर्वरक उपयोग की सबसे प्रभावी विधि है।

सारणी–जैव उर्वरकों से बीज उपचार हेतु विभिन्न फसलों के लिए पानी की मात्रा ।

पानी	गुड़	फसल
1 लीटर	250 ग्राम	मूंग, उड़द, चंवला
1.5 लीटर	300 ग्राम	अरहर
2.5 लीटर	300 ग्राम	चना, मूंगफली, सोयाबीन

2. **मृदा उपचार** – इस विधि में 2–3 कि.ग्रा. कल्चर की मात्रा को 50 कि.ग्रा. छनी हुई गोबर की खाद में मिलाकर बुवाई से पूर्व गीले खेत में छिड़क दिया जाता है।

3. **पौध उपचार** – यह विधि उन फसलों में काम लाई जाती है जिनकी पौध तैयार कर रोपण किया जाता हैं। एक बाल्टी में 10 लीटर पानी लेकर उसमें 4–5 पैकेट कल्चर के डालकर घोल तैयार, करते हैं। इस घोल में पौधों की जड़ो को 10–20 मिनट तक डुबोकर रोपाई की जाती है।

4. **कंद उपचार** – 1 कि.ग्रा. कल्चर का 40–50 लीटर पानी में घोल तैयार करते है। घोल में आल. लसहून, गन्ना, आदि के टुकड़ों को 10 मिनट तक डुबोकर बुवाई करते हैं।

नील हरित शैवाल – यह शैवाल 25–30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का प्रति हैक्टर यौगिकीकरण करती है। इसका उपयोग धान के खेतों में किया जाता है। इसकी कुछ मुख्य प्रजातियाँ है एनाबिना, नोस्टॉक, साइटोनिया, आसीलेटोरिया आदि।

(1) नीलहरित शैवाल का उत्पादन – इसके उत्पादन के लिए एक गड्ढा बनाकर पॉलिथीन बिछा देते है या 6''X3''X9'' आकार की गेल्वेनाइज्ड लोहे की चद्दर की ट्रे बनवा लेते हैं। 6'' X 3'' X 9'' आकार के गड्ढे में पॉलिथीन बिछाने के बाद 10 कि. ग्रा. भुरभुरी मिट्टी तथा 200 ग्राम सुपर फॉस्फेट डालकर 6" पानी भर देते हैं। जब मिट्टी पैंदे में बैठ जाये तो मृदा आधारित नील हरित शैवाल के कल्चर को 250 ग्राम लकड़ी के बुरादे के साथ मिलाकर 100 ग्राम प्रति गड्ढे के हिसाब से उपचारित

करते हैं। यदि गड्ढे में हरी काई दिखाई दे तो 0.05 प्रतिशत कॉपर सल्फेट के घोल का छिड़काव करना चाहिए। 10–15 दिनों के बाद गड्ढों के ऊपर काई की एक मोटी परत कालीन की तरह पानी के ऊपर तैरने लगती है। इस काई को या तो एकत्रित कर लेते हैं या गड्ढों का पानी पूर्ण रूप से सूखने देते हैं और नील हरित काई को सूखी पपड़ी के रूप में एकत्र कर पॉलिथीन की थैलियों में भर लेते हैं।

(2) प्रयोग विधि– इसका उपयोग धान की रोपाई के 7 दिन बाद करते हैं तथा जिस खेत में इसका उपचार करते हैं उसमें पानी स्थिर एवं 8–10 से.मी. हमेशा भरा रहना चाहिए। खेत में 8–12 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से नील हरित शैवाल का छिड़काव करते है। कल्चर डालने के बाद 4–5 दिनों तक पानी स्थिर रहना चाहिए।

एजोला– यह एक जलीय पौधा है जो कि प्रायः झीलों, तालाबों, नहरों तथा कहीं–कहीं धान के खत में पानी की सतह पर तैरता हुआ मिलता है। एजोला प्रतिदिन 1.0–1.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर तक नाइट्रोजन जमा करने की क्षमता रखता है। 20–25 दिन के भीतर इससे प्रति हैक्टर औसतन 20–40 कि. ग्रा. नाइट्रोजन प्राप्त हो जाती है ।

(1) एजोला उत्पादन विधि– अच्छी तरह तैयार खेत में 5 मी. X 2 मी. आकार की क्यारियाँ बनाकर उनमें –10 से.मी. पानी भर देते हैं। इसके बाद 0.5–1.5 टन प्रति हैक्टर (50–100 ग्राम प्रति वर्ग मीटर) के हिसाब से ताजा स्वस्थ एजोला क्यारियों में डालते हैं। 15–20 दिन बाद एजोला की एक मोटी तह बन जाने पर इसका) भाग बांस की सहायता से निकाल लेते है और शेष भाग को फिर बढ़ने देते हैं। 100मीटर क्षेत्र से प्रति सप्ताह 10 कि.ग्रा. एजोला प्राप्त हो सकता है। एजोला की अच्छी बढ़वार हेतु प्रति सप्ताह 5–8 कि.ग्रा. सुपर फॉस्फेट प्रति हैक्टर की दर से डालते हैं।

(2) प्रयोग विधि – एजोला का उपयोग धान के खेत में रोपाई के पहले हरी खाद के रूप में या रोपाई के बाद धान के साथ इसका संवर्धन किया जाता है। प्रथम विधि में इसका प्रयोग केवल उन्हीं क्षेत्रों में सम्भव है जहाँ रोपाई के पहले पर्याप्त पानी उपलब्ध हो। खेत को तैयार कर छोटी–छोटी क्यारियों में बाँट कर 1–10 से.मी. भर देते हैं। क्यारियों में 1. 0–2.0 टन प्रति हैक्टर की दर से एजोला डाल देते हैं। 10 कि. ग्रा. सुपर फॉस्फेट प्रति हैक्टर की दर से तीन बराबर भागों में खेत में डालें। 15–20 दिन बाद एजोला की मोटी तह बन जाने पर खेत से पानी निकाल कर हल चलाकर एजोला को मिट्टी में मिला दें। बाद में धान की रोपाई कर दें।

धान के साथ एजोला प्रयोग के लिए 0.5 –1.0 टन एजोला प्रति हैक्टर की दर से रोपाई के एक सप्ताह बाद खेत में डालें। 20–25 दिन बाद एजोला की मोटी तह बन जाती है। इसको मिट्टी में मिला दें। मिट्टी में नहीं मिलाने पर एजोला अपने आप सड़ जाता है और फसल को पर्याप्त लाभ देता हैं।

(ख) फॉस्फोरस विलेयक जैव उर्वरक– इस जैव उर्वरक में बेक्टीरिया, फफूंद व एक्टीनोमाइसीटीज की कोशिकाएँ जीवित अवस्था में होती हैं जो मृदा में अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में बदलने का कार्य करती हैं। ये पौधों की वृद्धि हेतु हारमोन्स, विटामिन आदि भी प्रदान करते हैं।

सारणी – फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में बदलने वाले सूक्ष्म जीव।

फॉस्फोरस घोलक बेक्टीरिया (पी.एस. बी.)	*बेसीलस मेगाथिरियम, बेसिलस पोलीमिक्सा, सुडोमोनास स्ट्राइटा* आदि।
फॉस्फोरस घोलक फफूंद (पी.एस.एफ.)	*एसपरजिलस अवामोरी, एसपरजिलस केन्डीडस* आदि
फॉस्फोरस घोलक एक्टीनोमाइसिटिज स्ट्रेप्टोमाइसिन स्पीशिज(पी.एस.ए.)	*स्ट्रेप्टोमाइसिन स्पीशिज*

(1) प्रयोग विधि–पी.एस.बी.–पी.एस.एम. (Phosphorus solubilizing micro - organisms) कल्चर का उपयोग। *एजोटोबेक्टर* या *राइजोबियम* की तरह ही बीज उपचार, भूमि उपचार व पौध उपचार के रूप में किया जाता है जिसका वर्णन पूर्व में किया जा चका है।

माइकोराइजा – यह एक विशेष प्रकार का कवक होता है जो बहुशाखीय लम्बे तंतुओं से बना होता है । पौधों तथा दाल वाली फसलों की जड़ो में इसके तंतु प्रवेश कर जाते हैं। तन्तुओं का वह भाग जड़ों के बाहर रहता है मिट्टी से लगातार फॉस्फोरस अवशोषित करता रहता है। यह फास्फोरस तन्तुओं के अन्दर गति कर पौधों की जड क्षेत्र के अन्दर पहँच जाता है। कवक व पौधों की जडों के बीच सह–जाविता होती है जिससे कवक मदा से जल एवं खनिज लवणों को अवशोषित कर पौधों को प्रदान करता है तथा पौधे कवक को कार्बनिक भोज्य पदार्थ प्रदान करते हैं। उदाहरण –VAM (वेसिकुलर अरबोसकुलर माइकोराइजा)।

❑❑❑

हरी खाद उगायें : अनेक लाभ पायें

अशोक कुमार शर्मा, विनोद कुमार
भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

भूमि पर लगातार शस्य उत्पादन के कारण मृदा में नत्रजन व कार्बनिक पदार्थ की कमी होती है। हमारे देश की जलवायु गर्म होने के कारण मृदा में कार्बनिक पदार्थ ईंधन की तरह नष्ट हो जाता है। इन दोनों कारणों से हमारे देश की मृदाओं में औसत नत्रजन 0.05 प्रतिशत से 0.07 प्रतिशत तक तथा कार्बन 0.3–0.6 प्रतिशत तक पाया जाता है। जबकि अमेरिका व यूरोप की मृदाओं में औसतन 0.10–0.17 प्रतिशत तथा कार्बन औसत 1.5–3.0 प्रतिशत तक पाया जाता है। अतः मृदा की उर्वरा शक्ति बनाये रखने तथा उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए हमारे देश में नत्रजन व कार्बनिक पदार्थो का महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

मृदा में नत्रजन व कार्बनिक पदार्थ का स्तर बढ़ाने के लिए हरी खाद का प्रयोग ही सर्वोत्तम है। ''हरी खाद'' वह खाद है, जो भूमि की उर्वरा शक्ति को बढाने वाली फसलों को हरी दशा अथवा पकने के निकट पहुंचने की अवस्था में खेत जोतकर दबा देने से प्राप्त होती है। अविच्छेदित अर्थात् बिना गले–सड़े हरे पौधों (दलहनी अथवा अदलहनी) अथवा उनके भागों को जब मृदा की नत्रजन जीवांश की मात्रा बढाने के लिए खेत में दबाया जाता है तो प्राप्त खाद हरी खाद कहलाती है।

हरी खाद के लिए फसल का चुनाव

प्रत्येक फसल को हरी खाद के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि उनमें हरी खाद के गुण नही पाये जाते। हरी खाद के लिए फसल चुनते समय उसमें निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। 1)फसल शीघ्र उगने वाली हो। 2) हरी खाद वाली फसलें अधिक पत्तियों वाली एवं शाखादार होनी चाहिये ताकि भूमि में अधिक मात्रा में जीवांश पदार्थ हो सके। 3) फसल मुलायम तने वाली हो जिससे वह शीघ्र सड़ सके। 4) गहरी जड़ वाली फसल हो जिससे कि वह भूमि को खुला बना सके। 5) ऐसी फसल हो जिसका बीज आसानी से उपलब्ध हो सकता हो। 6) ऐसी फसल हो जो सूखा सहन कर सके। 7) ऐसी फसल हो जो अधिक नमी होने पर भी न मरे। 8) फसल ऐसी हो जो कमजोर भूमि में उग सकती हो। 9) दलहन की फसल हो जिससे कि वह वायु–मण्डल की नत्रजन को भूमि में संस्थापित कर सके। 10) विभन्न प्रकार की मृदाओं में पैदा होने में समर्थ हो। 11) मृदा पर अंतिम प्रभाव अच्छा छोडती हो। 12) ऐसी फसल हो जो भूमि की साधारण तैयारी करने पर भी अच्छी प्रकार उग सके। 13) फसल कीट एवं रोग अवरोधी हो। 14) भूमि की उर्वरा–शक्ति की वृद्वि में अधिक से अधिक सहायक हो। 15) फसल चक्र में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाली हो। 16) जडों पर प्रचुर मात्रा में ग्रन्थियां हों। 17) प्रचुर मात्रा में बीज पैदा करने वाली हो।

हरी खाद के लिए प्रयोग होने वाली फसलें

हरी खाद के लिए दलहनी अथवा अदलहनी फसलों का प्रयोग कर सकते है। मुख्य फसलें निम्न प्रकार है।

- सनई – इस फसल का हरे खाद की फसलों में प्रथम स्थान है। यह खरीफ ऋतु की फसल है और इसमें हरी खाद के लिए आवश्यक सभी वांछित गुण पाये जाते है। यह शीघ्र बढने वाली फसल है और कुछ ही सप्ताह में इसकी ऊँचाई 1–1.5 मीटर हो जाती है। यह भूमि में दबाये जाने पर शीघ्र ही सड़ जाती है।
- ढ़ैंचा– सनई के बाद ढ़ैंचा द्वितीय स्थान रखता है। यह हमारे देश में हरी खाद के लिए बहुत प्रयोग किया जाता है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि यह सूखा सहन कर सकता है, नीची भूमि में जहाँ पर जलानुवेधन की समस्या रहती है, उग सकता है। कुछ लवणीय भूमि में भी यह उगाया जाता है। इसका बीज 50–80 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर बोया जाता है।
- दाल की फसल– मूंग, मोठ, उडद इत्यादि दाल की फसलें भी हरी खाद के लिए उपयोगी पायी गयी है। मूंग का हरी खाद के लिए काफी प्रयोग होने लगा है।
- ग्वार– यह फसल कम बर्षा वाले स्थानों में हरी खाद के लिए उत्तम रहती है।
- नील – इसका प्रयोग हरी खाद के लिए काफी समय से प्रचलित है। यह खरीफ ऋतु में हरे खाद के लिए प्रयाग की जाती है।

इसके अलावा लोबिया, कुल्थी आदि का प्रयोग भी खरीफ ऋतु में हरी खाद के लिऐ किया जाता है। उपरोक्त फसलों के अतिरिक्त कुछ रबी की फसलें भी है जो हरी खाद के लिए प्रयोग की जा सकती है। जैसे– सैंजी, बरसीम, मैथी, खेसारी, मटर व मसूर आदि ।

हरी खाद प्रयोग करने की विधि

हरी खाद से सर्वोत्तम लाभ प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि इससे सम्बन्धित कृषि कार्यो का ज्ञान भली भाँती होना चाहिए। इन्हीं पर हरी खाद की सफलता एवं असफलता निर्भर करती है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कारकों का विशेष ध्यान रखना चाहिएः—

- मिट्टी— हल्की मिट्टी के लिए हरी खाद अच्छी होती है। भारी मिट्टी के लिए जिसमें दरारें है। हरी खाद अच्छी नहीं समझी जाती है।
- बुआई का समय— जलवायु की भिन्नता के कारण इस विषय में कोई निश्चित निर्णय नहीं दिया जा सकता। फिर भी जहाँ तक संभव हो रबी की फसल के लिऐ बर्षा आरम्भ होने के पश्चात् ही शीघ्र बुआई कर देना सर्वोत्तम है। तथा खरीफ के लिए मार्च के महीने में बुआई की जा सकती है।
- फसल को भूमि में दबाना— प्रयोगों के निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जाता है कि हरी खाद की फसलों को उस समय जोतना सर्वोत्तम है जबकि उनमें फूल आने को हों। जब हरी खाद सबसे अधिक रसयुक्त हो तभी उसे जोतकर मिट्टी में मिलाना चाहिए। ऐसी दशा में हरी खाद का विघटन शीघ्रता से होता है। और विघटन से पोषक तत्व ऐसे रूप में रहते है कि आगामी फसलें उससे अधिक लाभ उठा सकती है।
- हरी खाद को पलटने की विधिः— पहले फसल को पाटा लगाकर गिरा देना चाहिये। तत्पश्चात मिट्टी में मिला देना चहिये। दबाते समय यह ध्यान रहे कि पौधो को भूमि के उपरी तल पर ही दबाया जाये। मुख्य फसल को बोने से लगभग 40—45 दिन पहले ही हरी खाद वाली फसलों को जोत देना चाहिये। इसको सडने में 4 से 5 सप्ताह लग जाते है।
- हरी खाद का विघटनः— हरी खाद में विघटन की क्रिया मिटट्ी में जोतकर दबा देने के पश्चात आरम्भ होती है। इस क्रिया में अनेक विभिन्न प्रकार के जीवाणु सहायक है। विघटन की क्रिया सुचारू रूप से चलते रहने के लिये उचित नमी (लगभग 60 से 80 प्रतिशत जलधारण क्षमता मिट्टी में पायी जानी चाहिये), तापक्रम (300 से 400 सेन्टीग्रेट), वायु, प्रकाश, चूना तथा फास्फोरस आदि भोजन की उपस्थिति भूमि में अनिवार्य है।

हरी खाद प्रयोग करने की सावधानियां

- कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सिचाई के साधन उपलब्ध होने पर ही हरी खाद का प्रयोग करना चाहिये।
- हरी खाद के लिऐ कोमल तने व पत्तियों वाली फसलों का प्रयोग करना चाहिये।
- हरी खाद को जोतने से पहले सुपर फास्फेट डालना चाहिये जिससे जीवाणुओं की संख्या में वृद्वि होती है।
- हरी खाद जोतने और आगामी फसल के बीच अन्तर इतना हो कि हरी खाद का विघटन भली प्रकार हो जाये।
- फसल की पलटाई उस समय की जानी चाहिये जब इस पर फल आने वाले हो।
- फसलों को दबाते समय यह मिट्टी में पूर्णतया ढ़क जानी चाहिये।
- यदि फसलों को पलटने के पश्चात मिट्टी में नमी की कमी हो तो सिचाई कर देनी चाहिये।
- शुष्क क्षेत्रों में हरी खाद की फसले छोटी अवस्था में जब पौधे कोमल हो, दबाना सर्वोत्तम है।

हरी खाद से लाभ

- हरी खाद के प्रयोग से जीवांश पदार्थो की मात्रा में वृद्वि होती है।
- हरी खाद भूमि में नत्रजन की प्रतिशत मात्रा बढ़ाती है क्योंकि अधिकतर हरी खाद वाली फसलों में नत्रजन स्थिरीकरण वाले जीवाणु पाये जाते है।
- भूमि की भौतिक, जैविक तथा रासायनिक संरचना में सुधार होता है।
- इससे मृदा जल को वाष्प के रूप में उड़ने से रोका जा सकता है।
- मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ती है।
- भूमि में वायु का आवागमन अच्छी तरह से होने लगता है।
- क्षारीय मृदा की पी.एच. मान कम हो जाता जिससे केल्सियम, फास्फोरस, मैग्नीशियम एवं पोटेशियम अधिक मात्रा में पौधों को प्राप्त होने लगता है।
- हरी खाद से नत्रजन के अलावा पौधों को अन्य पोषक तत्व भी प्राप्त होते है।
- हरी खाद वाले पौधे भूमि की उपरी सतह को जमा देते है जिससे भू—क्षरण नही हो पाता।
- हरी खाद वाली फसले शीघ्रता से उगती है अतः खरपतवार स्वयं ही नष्ट हो जाते है।
- हरी खाद वाले पौधे की जड़ें भी खाद का काम करती है तथा पानी के ह्रास को कम करती है।
- रासायनिक खादों के प्रयोग से उत्पन्न होने वाले दोषों का दूर करने में सहायक है।
- भूमि को अत्यन्त सस्ते मूल्य पर खाद मिल जाती है।

प्रदूषित मृदा से भारी धातु निष्कासन : सरसों की भूमिका

मोहन लाल दौतानियॉ, मुरलीधर मीणा, मुकेश कुमार मीणा
भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

जनसंख्या में लगातार वृद्धि तथा प्राकृतिक संसाधनों की गुणवत्ता व उपलब्धता में कमी, खाद्य उत्पादन की दर को प्रभावित करती है। समय के साथ फसल उत्पादन में बढ़ोत्तरी निरन्तर की जा रही है जो कि वर्तमान समय की मॉग है। इन परिस्थितियों में किसान या तो व्यर्थ अथवा प्रदूषित भूमि का उपयोग करेगा जिससे कि पैदावार में कम से कम कुछ तो बढ़ोत्तरी संभव हो सके। दूसरी ओर औद्योगिक इकाइयों द्वारा निष्तारित अपशिष्ट पदार्थों के द्वारा प्राकृतिक जल व भूमि की प्रदूषण की दर में वृद्धि मापी गई है। किसान फसल उत्पादन के दौरान जल की कमी वाले क्षेत्रों में प्रदूषित जल से सिचाई करता है। इस प्रकार शहरों में औद्योगिक इकाइयों द्वारा निष्तारित विभिन्न रसायनों युक्त गन्दा पानी, सीवेज का पानी, उस क्षेत्र की मृदा को भी प्रदूषित करता है। शहरों के किनारे प्रदूषित जल द्वारा होने वाली खेती को सीवेज फार्मिंग कहते हैं। इस प्रकार की खेती के द्वारा किसान मुख्यतः वह फसलें उत्पादित करता है जिनकी बाजार में अधिक मॉग है तथा जिन्हें तुरन्त बेचकर नकद आमदनी प्राप्त होती है जैसे सब्जियॉ व फल आदि।

प्रदूषित जल के उपयोग के कारण

भू–जल स्तर का लगातार कम होना तथा उपलब्ध जल की गुणवत्ता का फसल के अनुकूल न होना भी प्रदूषित जल के उपयोग का मुख्य कारण है जो कि शहरों के नजदीक अत्यधिक उपयोग में लाया जाता है। प्रदूषित जल के खेती में उपयोग करने के कई कारण हैं लेकिन उनमें से कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु निम्न प्रकार हैं।

खेती में सिचाई पानी की कमी:– दिनों–दिन भू–जलस्तर में गिरावट होने के कारण सीवेज फार्मिंग को बढ़ावा मिलता है। भारत जैसे विकासशील देश में जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि, स्वच्छ जल की मांग को बढ़ाता है जिससे कृषि के लिए स्वच्छ जल की उपलब्धता में दिन–प्रतिदिन कटौती हो रही है। बड़े–बड़े जल स्रोत या जल इकाइयां जो खेती के लिए आरक्षित थीं कहीं न कहीं पीने के पानी के लिए ही आवंटित हो कर रह गई हैं। अतः इन परिस्थितियों में किसान खेती के लिए पानी की कमी को पूरा करने के लिए प्रदूषित रसायनों युक्त पानी को उपयोग करने के लिए मजबूर हो रहा है।

पोषक तत्वों की उपलब्धता :– प्रदूषित जल में कई प्रकार की औद्योगिक इकाइयों का अपशिष्ट मिला होता है जिसके कारण विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व जो कि फसल उत्पादन के लिए आवश्यक होते हैं जैसे – नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश, मैग्नीशियम, गंधक, जिंक, तांबा, निकिल, बोरान, लोहा इत्यादि। ये सभी तत्व विभिन्न इकाइयों के अपशिष्ट जल में पाये जाते हैं तथा सिंचाई के दौरान पौधों को उपलब्ध होते हैं। इन सभी पोषक तत्वों के अलावा सीवेज घुलित अपशिष्ट जल में कार्बन तत्व की मात्रा भी अधिक पाई जाती है। भारतीय मृदा में कार्बन की मात्रा बहुत कम होने के कारण अपशिष्ट जल के कार्बन के द्वारा फसल की पैदावार में बढ़ोत्तरी होती है। देश के विभिन्न स्थानों पर हुए अनुसंधान से यह पता चला है कि लगातार सीवेज जल को खेती में उपयोग करने से मृदा के कार्बन तथा पोषक तत्वों की मात्रा में बढ़ोत्तरी पाई गई है जो कि किसानों को इसके उपयोग करने के लिए आकर्षित करती है।

स्रोत	मृदा गुण					
	पी.एच.	विद्युत चालकता डिसी साइमन/मी	कार्बन की मात्रा (प्रतिशत)	नत्रजन	फास्फोरस	पोटाश
				(किलोग्राम/है.)		
सीवेज	7.62	0.50	5.92	296.3	26.9	343
भू–जल	7.45	0.45	5.53	262.5	16.2	321

किसानों में जानकारी का अभाव :– भारत जैसे विकाशसील देशों में वैज्ञानिक तकनीकों का विकास विकसित देशों जितना नहीं हो पाया है जिसके कारण सटीक व कम समय में प्रदूषित जल से होने वाले हानिकारक प्रभावों को आमजन तक नहीं पहुँचाया जा सका है। विश्व में कई विकसित देश प्रदूषित जल के नालों को वैज्ञानिक विधि से उपचारित कर विभिन्न श्रेणियों में विभक्त कर उनकी गुणवत्ता के अनुसार उपयोग में लेते हैं लेकिन भारतवर्ष में इस प्रकार की व्यवस्था अभी संभव नहीं हो पायी है। हमारे यहॉ विभिन्न प्रकार की ओद्योगिक इकाइयों का अपशिष्ट जल एक जगह मिश्रित कर दिया जाता है जिससे की हानिकारक तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है तथा जल को उपचारित करने में भी अधिक समय व धन की आवश्यकता होती है।

दूसरी ओर शिक्षा व जागरूकता की कमी भी किसानों को इस प्रकार के प्रदूषित जल को उपयोग करने में सहायक है। हमारे देश में आज भी किसान फसल की पैदावार को ही महत्व देता है और कहीं ना कहीं फसल गुणवत्ता इस दौड़ में पीछे रह जाती है। वर्तमान में भारतीय बाजार फसल गुणवत्ता का मापन व बाजार विकसित होने की दिशा में अग्रसर होने के लिए प्रयत्नरत है। इसके विपरीत विकसित देश फसल गुणवत्ता पर अधिक जोर देते हैं न कि फसल पैदावार पर। इसलिए उन देशों में अपशिष्ट पदार्थों के निष्तारण की व्यवस्था लागू है।

गन्दे पानी में हानिकारक तत्व :– गन्दे पानी में कई पोषक तत्व पाये जाते हैं जो फसल पैदावार को बढ़ाते हैं लेकिन विभिन्न औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाले अपशिष्ट में एक प्रकार या एक से अधिक पोषक तत्व/भारी तत्व पाये जाते हैं जो कि फसल व मृदा की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। सूक्ष्म तत्वों की आवश्यकता से अधिक मात्रा में भूमि में उपलब्धता भी फसल उत्पादकता को कम कर देती है। जैसे जिंक एक आवश्यक सूक्ष्म तत्व है जो कि फसल उत्पादन के लिए आवश्यक है लेकिन औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाले अपशिष्ट में जिंक का लम्बे समय तक खेती में उपयोग करने से भूमि में जिंक की अधिकता हो जायेगी और वह अन्य पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करेगी जिससे फसल उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

गन्दे पानी में पाये जाने वाली नमक की मात्रा भी मृदा स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालती है। नमक के कारण मृदा की विद्युत चालकता और पी.एच. मान में बढ़ोत्तरी होती है जिससे मृदा से पोषक तत्व व पानी की उपलब्धता फसल के लिए घट जाती है। इसके अलावा प्रदूषित जल में पाई जाने वाली भारी धातुओं की मात्रा भी पैदावार को कम करती है। भारी धातु प्रकृति में पाई जाने वाली वो धातुयें हैं जिनकी आणविक सान्द्रता 5 ग्राम प्रति सेन्टीमीटर से अधिक हो तथा यह कम मात्रा में भी पादप, पशु व मानव अंगों की क्रियाओं पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। लम्बे समय तक प्रदूषित जल का उपयोग करने से मृदा में भारी तत्वों की सान्द्रता बढ़ जाती है तथा खाद्य श्रॅखला द्वारा पशु व मनुष्य के शरीर में पहुॅच कर उन की क्रियाओं को बाधित करती है। इसकी अधिकता की स्थिति में पौधा, पशु व मनुष्य की मृत्यु भी हो सकती है। आमजन में इसकी अधिकता को कैंसर के नाम से भी जानते हैं। प्रदूषित जल के उपयोग से मृदा की गुणवत्ता का भी ह्रास होता है तथा मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों की संख्या व प्रकार में कमी आती है। यह सूक्ष्म जीव मृदा में उपस्थित अपशिष्ट पदार्थों का विघटन करके उसको अविषाक्त बनाते हैं अतः अधिक समय तक गन्दे पानी का उपयोग करने से उपजाऊ भूमि भी अनुपजाऊ भूमि में परिवर्तित हो जाती है।

तालिका : भारी तत्वों की मात्रा में वृद्धि सीवेज फार्मिंग के द्वारा।

स्रोत	भारी तत्व (मिली ग्राम/किलोग्राम)							
	लोहा	जिंक	कॉपर	मैग्नीज	कैड़मियम	सीसा	कोबाल्ट	निकल
सीवेज	22120	1210	198	382	3.72	385	46	61
भू–जल	9090	26	52	446	0.04	12	12	25

धातु निष्कासन के लिए सरसों फसल का उपयोग?

प्रदूषित भूमि या गन्दे पानी के उपयोग वाली कृषि भूमि पर सरसों फसल लेने से भारी धातुओं की मृदा में कमी देखी गई है। सरसों ब्रैसिका कुल का पौधा है तथा विश्व में पाये जाने वाले उन पौधों में से एक है जो अधिक मात्रा में भूमि से भारी धातुओं का अवशोषण करके उनके पत्तियों में स्थित रिक्तिका व अन्य भागों में संचयित करते हैं इस प्रकार भारी धातु मनुष्य द्वारा उपयोग किये जाने वाले तेल में नहीं होती है। सरसों के

पौधे का बायोमास अधिक होता है तथा जड़–तन्त्र भी 15–20 सेमी तक मुख्यतयाः पाया जाता है जो कि मृदा से भारी तत्वों के निष्तारण के लिए उपयुक्त है क्योंकि अधिकांश फसलों की जड़ें 15–20 सेमी तक ही भूमि में पायी जाती हैं। इसके अलावा सरसों की फसल को कम पानी की आवश्यकता होती है तथा प्रतिकूल मृदा परिस्थितियों में भी आसानी से लग जाती है। भारी धातु की मृदा में अधिकता से भी इसकी पैदावार में कोई विशेष कमी नहीं होती है। अगर हमें भूमि से भारी धातुओं का निष्तारण करना है तो भूमि में धातुओं की मात्रा के आधार पर फसल चक्र में सरसों की फसल को सम्मिलित करना लाभकारी हो सकता है। अतः सरसों एस प्रकार की भारी धातु निष्तारण फसल है। यह प्रकृति में पाये जाने वाली फसलों में सबसे अधिक भारी धातु मृदा से अवशोषित करती है तथा इस मात्रा को खाद्य पदार्थों जैसे तेल में भी नहीं बढ़ाती है। इस फसल की शस्य क्रियायें भी सामान्य हैं तथा अधिक बायोमास पैदा करने के कारण अत्यधिक उपयोगी है। भारी धातु की सान्द्रता मृदा में दिनों–दिन बढ़ती ही जा रही है जिससे की भारत जैसे देशों में केंन्सर के मरीजों की संख्या भी बढ़ती ही जा रही है दूसरी ओर बढ़ती जनसंख्या को खाद्य पदार्थों की उपलब्धता भी एक बडी चुनौती है। इसके साथ ही वैज्ञानिक अनुसंधानों में तीव्रता व सटीक माप के लिए सुविधाओं/अनुसंधान प्रयोगशालाए खोलने की आवश्यकता है। इसके अलावा प्रदूषित जल से होने वाले दुष्प्रभावों से किसानों व आमजन को प्रशिक्षित करके हम स्वस्थ धरा के स्वास्थ्य को बनाये रख सकते हैं व मानव जीवन को होने वाली बीमारियों से बचाया जा सकता है।

बरसै जब ऊपर से पानी बोवे,
ज्वार बाजरा धानी मम्का उडद मूँग मनमानी, मूँगफली तिल बोय।
खेत में धरे ईश्वर का ध्यान, तेरी जय हो वीर किसान।।

लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का प्रबन्धन

रमेश चन्द्र सॉंवल[1], चेतन कुमार दौतानियॉं[1], राजेश कुमार दौतानियॉं[2]
[1]मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, कृषि महाविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान
[2]भा.कृ.अनुप. – सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

लवणीय एवं क्षारीय मृदा प्रायः शुष्क एवं अर्धशुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में पायी जाती है। इस प्रकार की मृदायें विशेष रूप से उत्तरप्रदेश, गुजरात, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, पंजाब, महाराष्ट्र, हरियाणा, मध्यप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, कर्नाटक आदि राज्यों में पायी जाती है। राजस्थान के लगभग 20 जिलों में लवणीय एवं क्षारीय भूमि की समस्या है। इन मृदाओं में घुलनशील लवणों जैसे सोडियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, एवं पोटेशियम, क्लोराइड, सल्फेट, कार्बोनेट, बाईकार्बोनेट आदि की मात्रा में वृद्धि हो जाती है और इससें उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

1. **लवणीय मृदा**– जिसमें मृदा के संतृप्त निचोड़ की विद्युत चालकता 4 डेसी साइमेन्स प्रति मीटर से अधिक, विनिमयशील सोडियम 15 प्रतिशत से कम तथा पी.एच. 8.5 से कम होता है वह लवणीय मृदाओं की श्रेणी में आती है। इन मृदाओं में कैल्शियम, मैग्नीशियम, सोडियम तथा पौटिशियम के घुलनशील लवण मुख्यतः क्लोराइड तथा सल्फेट के रूप में पाये जाते है, जिससे मिट्टी की सतह पर सफेद या भूरे रंग का बारीक रेह के रूप में पाउडर दिखाई देता है। मिट्टी की ऊपरी सतह सूखने पर खेत में जगह–जगह सफेद चकते (पेच) उभर आते है। साधारण भाषा में इन्हें रेह, रेहिली व ऊसर भूमि भी कहा जाता है।

2. **क्षारीय मृदा**– इन मृदाओं के संतृप्त निचोड़ की विधुत चालकता 4 डेसी साइमेन्स प्रति मीटर से कम विनिमयशील सोडियम 15 प्रतिशत से अधिक, तथा पी.एच. मान 8.5 से अधिक होता है। इन मृदाओं में सोडियम लवणों की प्रचुर मात्रा होने से विनिमयशील सोडियम की मात्रा भी अधिक होती है। इस कारण ऐसी मृदाओं की भौतिक दशा खराब होती है। जल व वायु का संचार कम होता है, अधोंमृदा में कठोर कंकड़ की परत जमा हो जाती है जिससे पानी नीचे नहीं जा पाता है व भूमि चिपचिपी हो जाती है, तथा सूखने पर सीमेन्ट की भांति कठोर हो जाती है इन्हे काली ऊसर मिट्टी भी कहते है।

3. **लवणीय – क्षारीय मृदायें**– इन मृदाओं का पी.एच. मान 8.5 से अधिक मृदा के संतृप्त निचोड़ की विधुत चालकता 4 डेसी साइमेन्स प्रति मीटर से अधिक तथा विनिमयशील सोडियम भी 15 प्रतिशत से अधिक पाया जाता है। ऐसी मृदाओं में विलेय लवण और विनिमयशील सोडियम दोनों अधिक मात्रा में होते है। मिट्टी के नीचे कैल्शियम कार्बोनेट के कंकरो की अपारगम्य परत होने की वजह से मिट्टी में हवा व पानी का प्रवेश कम हो जाता है। जल निकास कम होने के कारण पानी सतह पर खड़ा रहता है। साधारण भाषा में इन्हें रेह युक्त ऊसर या रेहीली ऊसर मिट्टी कहते हैं।

लवण प्रभावित मृदाओं की पहचान

लवणीय मृदा के लक्षण –

- गर्मियों में लवण की सफेद या सफेद भूरी राख के रंग की तह इन मृदाओं पर दिखाई पड़ती है जो वर्षा होने पर या सिंचाई करने पर विलीन हो जाती है।
- कभी–कभी पौधों की पत्तियों का रंग गहरा नीला व किनारे झुलसे हुए दिखाई पड़ते है। तथा पौधों में क्लोरोसिस, ऊतकक्षय एवं विचित्र सुखाव के लक्षण भी दिखाई देते हैं।
- मिट्टी में पर्याप्त नमी होते हुए भी जल की कमी प्रदर्शित करते है और पौधें मुरझा जाते है व वृद्धि कम होती है।
- प्राकृतिक वनस्पति कम अथवा टुकड़ों में होती है तथा इन मृदाओं में कुछ ही तरह के पौधे सरलता पूर्वक उगते हैं।

क्षारीय मृदा के लक्षण –

- इन मृदाओं की पहचान लवणीय मृदाओं की अपेक्षा कठिन है। वर्षा ऋतु में जल काफी समय तक सतह पर भरा रहता है। मृदा गीली होने पर चिकनी हो जाती है तथा इसके उपर भरा हुआ जल गुदला रहता है और सुखने पर मृदा में दरारें पड़ जाती हैं कभी–कभी कार्बनिक पदार्थ जल में घुलकर मृदा की उपरी सतह को काली बना देता है। कुछ पौधों की पत्तियों का रंग गहरा हरा हो जाता है तथा पौधे झुलसे हुए दिखाई देते है। क्षार ग्रस्त मृदाओं में पौधें की वृद्धि कम होती है और बीजों का अकुरण प्रभावित होता है।

लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का प्रबन्धन

इन मृदाओं के सुधारे जाने के पश्चात इनका प्रबन्ध ठीक प्रकार से नही किया जाता है तो वह पुनः लवणीय मृदा में

परिणित हो जाती है। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि इनका प्रबन्ध अच्छी प्रकार से किया जाये ऊसर मृदाओं के प्रबन्ध में वे विशेष यांत्रिक एवं सस्य क्रियाऐं सम्मिलित होती हैं जो लवणों एवं क्षारों के हानिकारक प्रभावों को कम करने में सहायक होती है।

1. खेत की तैयारी तथा जुताई की विधिया :–(1) जहाँ तक हो सके खेत को समतल करना चाहिए। समतल खेत में सिंचाई का पानी समुचित रूप से बराबर बट जाता है। खेत समतल न होने पर उसके ऊँचे स्थानों पर पानी नहीं पहुँच पाता तथा वहां लवण लीचिंग द्वारा नीचे नहीं जा पाते जहाँ भूमि ढालू है वहाँ पर मेड़ / बांध बनाने चाहिए।
2. क्षारीय मृदाओं की भौतिक दशायें प्रायः खराब होती है इसलिये गीली अवस्था में जुताई करने पर कीचड़ एवं सूखी अवस्था में ढ़ेले बन जाते हैं। इन मृदाओं की जुताई उपयुक्त नमी की मात्रा होने पर ही करनी चाहिऐ। भारी मशीनों से जुताई–गुड़ाई नहीं करनी चाहिये। मिट्टी पलटने वाले हल से 15–20 से.मी. गहरी जुताई करने के पश्चात बीज बोया जाए तो अंकुरण अच्छा होता है।
3. मृदाओं की भौतिक क्यारी की तैयारी तथा रोपण प्रविधि :– ऐसी मृदा में बीजों का अंकुरण एक जटिल समस्या है क्योंकी अंकुरण पर लवणों का बुरा प्रभाव पड़ता है। क्यारी का आकार पौधों का रोपण तथा सिंचाई की प्रविधि इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे बीज तथा पौधों की जड़ों के आस–पास लवणों की मात्रा कम हो सके। इन मृदाओं में कूड़–सिंचाई वाली फसलों के बीज मेढ़ो के ढलान पर बोना चाहिए और उगने से पूर्व एक सिंचाई देनी चाहिये। इससे लवणों का अंकुरण पर कम असर होता है और पौधा अपने को जल्दी ही स्थापित कर लेता है।
4. लवणीय मृदा में मेढ़ों की दिशा पूरब से पश्चिम की ओर होनी चाहिये। फसलों को मेढ़ पर उत्तरी ढलान की ओर बोना चाहिये क्योकि इन ढ़लानों पर लवणों की सांद्रता दक्षिणी ढ़लान की अपेक्षा कम होती है, अधिक लवणीय मृदा में कूंड़ों वाली फसलों को एक कूंड़ छोड़कर दूसरी कूंड में बोना चाहिये।
5. सिंचाई :– सिंचाई विधि पौधों की बढ़वार में कई प्रकार की वृद्धि कर सकती है। जल मृदा में लवण–सांन्द्रता को अधिक तनु रखता है। सिंचाई से लवण पौधों से नीचे लीचिंग द्वारा चले जाते है तथा पौधों को जल शोषण में आसानी होती है। यदि पानी अधिक मात्रा में उपलब्ध है तो इन मृदाओं में प्रवाहित सिंचाई का तरीका अधिक लाभप्रद होता है क्योंकि सिंचाई की इस विधि से विलेय लवण नीचे चले जाते हैं इन मृदाओं में सिंचाई जल्दी–जल्दी करनी चाहिये तथा प्रत्येक सिंचाई के समय कम पानी खेत में लगाना चाहिये।

सस्य सम्बन्धी कियायें

(1) लवण प्रतिरोधी फसलों का चुनाव –

(अ) अंकुरण – फसलों का चुनाव करते समय बीजों के अकुंरण की सफलता पर ज्यादा जोर देना चाहिये तथा फसल बाद की अवस्थाओं में लवण प्रतिरोधी होनी चाहिये। उदाहरणार्थ चुकुन्दर बाद की अवस्थाओं में अधिक प्रतिरोधी है परन्तु प्रारम्भ की अवस्था में अंकुरण के समय वह लवणों की उपस्थिति को सहन नही कर पाती है।

(ब) लवण सहिष्णु फसल उगाना – उन लवणीय मृदाओं में जहाँ सुधार का कोई तरीका सफलतापूर्वक नही अपनाया जा सकता, वहाँ पर लवण सहिष्णु फसले उगायी जा सकती है। इनको लवण सहिष्णुता के आधार पर तीन वर्गो में बांटा गया है।

तालिका :– लवणों के लिए फसलों की आपेक्षित सहिष्णुता।

फसल	उच्च लवण सहिष्णुता	मध्यम लवण सहिष्णुता	न्यून लवण सहिष्णुता
क्षेत्र फसलें	जौ, ढैंचा, चुकन्दर, तम्बाकू, शलजम, सरसों, कपास	राई, गेंहू, धान, ज्वार, बाजरा, मक्का, अरहर, मैथी	सेम, मूंग, उर्द, चना, मटर, सनई
शाकभाजी वाली फसलें	शलजम, चुकन्दर, पालक, मूली,	टमाटर, पत्तागोभी, फूलगोभी, सलाद, आलू, गाजर, मटर, खीरा, लोकी, करेला	सेम
चारे की फसलें	खारघास, रोडस घास	सेंजी, सूडान घास, रिजका, ज्वार, मक्का, बरसीम, लोबिया	ग्वार
फलों वाली फसलें	खजूर, फालसा	अनार, जैतून, अंजीर, अंगूर, अमरूद, आम, केला	नाशपाती, सेब, नारंगी, बेर, बादाम, नींबू

(स) बीजों का उपचार – बीजों को बोने से पहले लवण विलयन में डूबोने से फसलों की लवण प्रतिरोधकता बढ़ जाती है, तथा अंकुरण में वृद्धि होती है।

(द) लवणीय मृदा पर फसल चक्र– इन मृदाओं में सदेव फसलें उगाना चाहिये, इन्हें पड़ती नही छोड़ना चाहिये। इन मृदाओं को खाली छोड़ने से ये अपनी अवस्था में वापिस आ जाती है इन मृदाओं के लिये उपयुक्त कुछ फसल चक्र निम्न प्रकार से है।

- धान – जौ – धान
- पड़ती सरसों – बाजरा – राई
- धान – सरसों
- ढैचा – धान – बरसीम
- कपास – मक्का – आलू
- ग्वार – जौ – कपास – मेथी

(2) खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग– उर्वरकों को उनकी निर्धारित मात्रा से अधिक देकर फसलों पर लवणता का असर कम किया जा सकता है। नत्रजन की अधिक मात्रा (लगभग 25 प्रतिशत) से फसल अच्छी होती है। अमोनियम सल्फेट का प्रभाव यूरिया तथा किसान खाद से अच्छा होता है इन मृदाओं में पोटाश तथा फास्फोरस उर्वरकों के प्रयोग से सोडियम क्लोराइड का पौधों द्वारा अवशोषण कम हो जाता है। अकार्बनिक उर्वरकों के साथ कार्बनिक खादों का भी प्रयोग करना चाहिये। अकार्बनिक उर्वरकों की मात्रा एक साथ न देकर कई बार में उचित समय पर देनी चाहिये।

(3) रासायनिक सुधारकों का प्रयोग–

(अ) जिप्सम – इसके उपयोग से जमीन की भौतिक दशा सुधर जाती है तथा इसके रासायनिक व जैविक गुणों में बहुत सुधार आ जाता है। जिप्सम मिट्टी में घुलनशील कैल्शियम की मात्रा बढ़ाता है जो क्षारीय गुणों के लिए जिम्मेदार अधिशोषित सोडियम को घोलकर तथा मिट्टी के कणों से हटाकर अपना स्थान बना लेता है तथा भूमि का पी.एच. मान कम कर देता है जिसमें फसलों के लिए आवश्यक तत्वों की उपलब्धता मृदा में बढ़ जाती है। जिप्सम को जमीन में मिलाने से पहले आमतौर पर बारीक पीसकर तथा जमीन पर पाउडर की तरह भूरक कर इसको अच्छी तरह 10–15 सेमी. मिट्टी की सतह में मिला दिया जाता है तथा बाद में सिंचाई कर देते है। जिप्सम का उपयोग मृदा की जांच के आधार पर ही करना चाहिए। भूमि सुधारक के रूप में जिप्सम का प्रयोग केवल खरीफ में करते है। इसके उपयोग से तिलहनी फसलों में तेल की मात्रा व दलहनी फसलों में प्रोटीन की मात्रा में वृद्धि होती है।

(ब) जैविक उपाय– क्षारीय भूमि सुधारने के लिए ढ़ैंचा की हरी खाद का उपयोग अत्यन्त लाभकारी होता है इससे मिट्टी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार होता है जो कि सोडियम के हानिकारक प्रभाव को कम करता है। ढ़ैंचा की फसल को फूल आने पर भूमि में पलट देना चाहिए ताकि यह सड़ जाये और मिट्टी में हवा पानी का संचार अच्छी तरह हो सके। इससे जैविक पदार्थ एवं नाइट्रोजन जमीन में मिलकर पौधों को प्राप्त होगे, मृदा का पी.एच. मान कम होगा तथा सूक्ष्म तत्वों की उपलब्धता बढ़ेगी। हरी खाद के लिए ढ़ैचा के अलावा सनई, ग्वार एवं चंवला आदि की भी बुवाई की जा सकती है।

- चीनी मिल के प्रेसमॅड के लगभग 12.5 टन प्रति हैक्टेयर की दर से जमीन में ड़ालने पर क्षारीय भूमि में सुधार होता है। इसको बुवाई से एक सप्ताह पूर्व सिंचाई के साथ प्रयोग करना चाहिए।
- मदिरा/शराब उद्योग से प्राप्त सह उत्पाद स्पेन्टवाश को 5 लाख लीटर प्रति हैक्टेयर की दर से अच्छी तरह से जुताई किए हुए खेत में प्रयोग करें। पांच–सात दिन बाद अच्छे गुण वाले पानी से सिंचित करे। सिंचाई का पानी भूमि की सतह पर 10–15 से.मी. 25 घण्टे तक कम से कम भरा रखे, उसके बाद पानी को खेत से निकाल देवें। इसके बाद अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद 5 टन प्रतिहेक्टर की दर से खेत में डालें।

❑❑❑

जल संरक्षणः चिंतन की आवश्यकता

रामस्वरूप जाट, राम लाल चौधरी, हरवीर सिंह
भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

भारतीय संस्कृति में प्रकृति को अत्यन्त प्राचीन काल से ही आदरपूर्ण और सम्मानजनक स्थान दिया गया है। वैदिक काल में सृष्टि प्रक्रिया की धारणा से ही हमें प्रकृति और मनुष्य के बीच समन्वयात्मक सम्बन्ध की झलक मिलती है। सृष्टि को यज्ञीय पुरुष की रचना मानकर कहा गया है कि उन्होंने अपने शरीर से पृथ्वी, वायु, जल, प्रकाश और अंतरिक्ष आदि की रचना की है। भारतीय समाज के संचालन में हमेशा से एक विश्व दृष्टि रही है। यहाँ पर मनुष्य को कहीं से विशिष्ट स्थान या अधिकार नहीं दिया गया है। मनुष्य प्रकृति का विजेता नहीं है। प्रकृति केवल उसके उपभोग के लिए रची हुई नहीं है। सम्पूर्ण सृष्टि पवित्र है और पर्यावरण की रक्षा सबका कर्तव्य है। विश्नोई जाति के लोगों में वृक्षों को बचाने की परम्परा है, जो इसी विश्व दृष्टि का परिणाम है। देश के सभी भागों में पर्यावरण के प्रति यही विश्व–दृष्टि है। वैदिक कालीन मनुष्यों ने पर्यावरण के सभी कारकों के प्रति अपना आदर प्रकट करने हेतु उन्हें दैवी स्वरूपी प्रदान किया। उपनिषद में भी अग्नि, जल, वायु, आकाश आदि को सम्मानजनक स्थान प्रदान कर इसकी महत्ता को स्वीकार किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन ऋषियों को न केवल पर्यावरण की महत्ता का ज्ञान था, बल्कि वे इसके संरक्षण को भी श्रेय देते थे। मनुस्मृति में कहा गया है कि वृक्षों में भी चेतना होती है तथा वे भी सुख–दुख का अनुभव करते हैं। इसको सर जगदीश चन्द्र बोस के प्रयोगों ने यह सिद्ध भी कर दिया है जिसे विश्व समुदाय ने स्वीकार भी कर लिया है।

भारतीय चिंतन परम्परा में पारिस्थितिकी के संरक्षण हेतु वृक्ष (जंगल) का महत्व मानव जीवन में सर्वाधिक है। यहाँ वृक्षों को देवता मानकर उसकी सेवा करने की सोच अपनाई गई है। आज विशेषज्ञों का मानना है कि पर्यावरण संतुलन एवं जीवन रूपी रथचक्र को सही ढंग से गतिमान रखने के लिए समूचे भूभाग के 33 प्रतिशत क्षेत्र में वृक्ष वनस्पतियों का होना अनिवार्य है। भारतीय संस्कृति वस्तुतः वृक्षों से उत्पन्न हुई है। ऋग्वेद की ऋचा कहती है– भूर्जज्ञ उत्तानपदों (10–72–4) अर्थात पृथ्वी वृक्ष से उत्पन्न हुई है। स्वयं कृष्ण गीता में कहते हैं– अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां (10/16)। अर्थात मैं वृक्षों में पीपल का वृक्ष हूँ। आज वैज्ञानिक रूप से यह सिद्ध हो चुका है कि पीपल का वृक्ष वायु प्रदूषण रोकने में सर्वाधिक सहायक है। वैदिक काल में वायुमण्डल को प्रदूषण मुक्त रखने के लिए यज्ञ अथवा अग्निहोत्र जैसे कर्मकाण्ड की चर्चा मिलती है, जो नित्य दिनचर्या में सम्मिलित था। यह प्रश्न उठता है कि जहाँ प्रकृति के प्रति अपने पर्यावरण के प्रति ऐसी दृष्टि हो, वहाँ भी सम्पूर्ण विश्व के साथ–साथ नए–नए पर्यावरणीय संकट कैसे सामने आ रहे हैं ? इसके उत्तर में सर्वप्रथम यह कहा जा सकता है कि पर्यावरण को किसी एक देश की सीमा से आबद्ध नहीं किया जा सकता है। इस पर समष्टिगत दृष्टि से ही विचार करना उचित है।

जल संकट– जल प्रकृति की अनमोल धरोहर है। बिना पानी के जीवन संभव नहीं है। धरती के दो तिहाई हिस्से पर पानी भरा हुआ है। फिर भी पीने योग्य शुद्ध जल पृथ्वी पर उपलब्ध जल का मात्र एक प्रतिशत हिस्सा ही है। 97 प्रतिशत जल महासागर में खारे पानी के रूप में भरा हुआ है। शेष रहा दो प्रतिशत जल बर्फ के रूप में जमा है। आज समय है कि हम पानी की कीमत समझें। यदि जल व्यर्थ बहेगा तो आगे वाले समय में पानी की कमी एक महा संकट बन जाएगा। आज लोगों को एक–एक घड़े शुद्ध पेयजल के लिये मीलों भटकना पड़ रहा है। जल के टैंकर और ट्रेन से जल प्राप्त करने के लिये घंटों कतार में खड़ा रहना पड़ता है। रोजमर्रा के कामकाज नहाने, कपड़े धोने, खाना बनाने, बर्तन साफ करने, उद्योग धंधा चलाने के लिये तो जल चाहिए वह कहाँ से लाए जबकि नदी, तालाब, ट्यूबवैल, हैण्डपम्प एवं कुएँ बावड़ियाँ सूख गए हैं। पशु–पक्षियों को भी पानी के लिये मीलों भटकना पड़ता है। पेड़–पौधे भी सूखते जा रहे हैं। जल की कमी से अनेक कारखाने बंद होने से लोग बेरोजगार होते जा रहे हैं। खेती–बाड़ी के लिये तो और भी अधिक पानी की जरूरत है परन्तु पानी नहीं मिलने से खेती–बाड़ी चौपट होती जा रही है। जल संकट हमारे पूरे दैनिक जीवन को बुरी तरह से प्रभावित करता है। इसलिये इस मसले पर प्राथमिकता से ध्यान दिए जाने की जरूरत है। मानसून के दौरान अब हर साल देशभर में इसी तरह के हालात देखे जाने लगे हैं, जब कई राज्य बाढ़ के रूद्र रूप के सामने इसी प्रकार बेबस नजर आते हैं।

जल संकट तो हमारी भूलों और लापरवाहियों से ही उपजा है। हम अनावश्यक रूप से तथा अधिक मात्रा में जल का दोहन कर रहे हैं। दैनिक उपयोग में आवश्यकता से अधिक मात्रा में जल का अपव्यय करने की आदत ने जल संकट बढ़ा दिया है। बढ़ती जनसंख्या के कारण भी जल का उपभोग बढ़ता जा रहा है। खेती एवं उद्योगों में अधिक उत्पाद लेने की खातिर जल का उपभोग बढ़ा दिया है। जल स्रोतों से जल के उपभोक्ता तक पहुँच से पहले ही पाँचवा हिस्सा गटर में चला जाता है। वृक्षों की अंधाधुंध कटाई व वनों के लगातार घटने से वर्षा होने

की अवधि व साथ ही वर्षा की मात्रा में भी कमी आ रही है। कुओं, नलकूपों, तालाबों से अन्धाधुन्ध जल दोहन के कारण भूजल में कमी आ गई है। धरती में जल स्तर निरन्तर नीचे जा रहा है। कल–कारखानों से निकले दूषित जल व शहरी क्षेत्रों के गटर एवं कूड़े–कचरे ने जलस्रोतों को प्रदूषित कर दिया है जिससे पीने के पानी का संकट खड़ा हो गया है। यह सब कुछ अनियन्त्रित मानवीय गतिविधियों के कारण ही हुआ है।

भविष्य की चुनौतियों का मुकाबला

जल क्षेत्र में कुछ अक्षमताओं के परिणामस्वरूप वर्षा जल संग्रह और कम गन्दे अवजल के परिशोधन और फिर से इस्तेमाल में लाने जैसी चुनौतियाँ पैदा हुई हैं। फिलहाल भारत में साल भर में बरसने वाले पानी के केवल 8 प्रतिशत का ही उपयोग किया जाता है, जो दुनिया में सबसे कम है। मौजूदा बुनियादी ढाँचे का समुचित रखरखाव न होने से शहरी इलाकों में पाइप लाइनों से सप्लाई किए जाने वाले पानी का करीब 40 प्रतिशत बर्बाद हो जाता है। अवजल की सफाई कर उसे फिर से काम में लाने का कार्य लगभग नहीं के बराबर होता है। मिसाल के तौर पर पानी की भारी किल्लत का सामना कर रहा एक और देश अपने यहाँ कम गन्दे पानी के शत प्रतिशत का शोधन करता है और इसमें से करीब 94 प्रतिशत का पुनर्चक्रण किया जाता है। फिर से उपयोग में लाए गए पानी से उसकी सिंचाई की आवश्यकता पूरी हो जाती है।

जहाँ तक पेयजल का सवाल है, कुल बसावटों में से 81 प्रतिशत में फिलहाल प्रति व्यक्ति 40 लीटर पानी किसी–न–किसी स्रोत से उपलब्ध है। भारत में सिर्फ 18 से 20 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास पाइपलाइनों के जरिए सप्लाई किए जाने वाले पानी के कनेक्शन हैं। जैसा कि वित्त मंत्री ने जिक्र किया, सरकार की एक प्राथमिकता 2024 तक देश के सभी परिवारों को चिरस्थाई आधार पर पाइपलाइनों के जरिए पीने का पानी उपलब्ध कराने की है। इसके लिए जलशक्ति मंत्रालय ने 2019–20 में ग्रामीण जल आपूर्ति के लिए करीब 10,000 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया है। इसके अलावा स्वच्छ भारत मिशन ग्रामीण के लिए भी 10,000 करोड़ रुपए आवंटित करने का प्रस्ताव है। जल शक्ति मंत्रालय विकेन्द्रित लेकिन समन्वित जल संसाधन प्रबन्धन और सेवाएँ प्रदान करने को बढ़ावा देगा और उसका मुख्य जोर जल संरक्षण, जल स्रोत के स्थायित्व, भंडारण और अवजल के फिर से इस्तेमाल पर होगा। इस कार्य में जहाँ भी सम्भव होगा पानी का उपयोग करने वाले समाजों को शामिल किया जाएगा क्योंकि वे ही असली लाभार्थी हैं। जल संरक्षण के लिए विकेन्द्रित नियोजन के बेहतरीन तौर–तरीकों से सबक लिया जाना चाहिए। इनमें महाराष्ट्र में हिवारे बाजार और उत्तराखण्ड में समुदाय आधारित पेयजल आपूर्ति का स्वजल मॉडल शामिल है जिसका विस्तार किया जाना चाहिए।

जन भागीदारी से जल संरक्षण

हमारे देश के पुरखों से हमें अनेक प्रकार के जलस्रोत विरासत में मिले हैं। यदि हमने इस विरासत को संभाल कर नहीं रखा तो आने वाली पीढ़ियाँ हमें माफ नहीं करेंगी। हमारे देश के गाँव–गाँव में परम्परागत कुएँ, बावड़ी व तालाब बने हुए हैं। पिछले वर्षों में लम्बे समय से हम इनकी अनदेखी करते आ रहे हैं। इन्हें या तो तोड़–फोड़ दिया गया है या प्राकृतिक रूप से नष्ट हो गए हैं। आगे से इन जलस्रोतों की चिन्ता सभी मिलकर करेंगे तभी जल संकट से निजात मिल सकेगी। हमने अपने ही स्वार्थ में इन्हें उजाड़कर कंकरीट का जंगल बिछा दिया है। जनता ने जल पूर्ति की जिम्मेदारी अपने कंधों से उतारकर सरकार के कंधों पर रख दी है।

गाँव–गाँव और शहर–शहर में बने हुए जलस्रोतों का पुनरुद्धार किया जाना आवश्यक है। मोहल्ले, गाँव, शहर जहाँ भी ऐसे स्रोत हैं वहाँ के लोग मिलकर इन जलस्रोतों की जिम्मेदारियाँ अपने ऊपर लें। मिलकर इनमें जमा कूड़े–कचरे, मिट्टी, कंकड़, झाड़–झंखर को हटाएँ। जलस्रोतों के जल मार्ग में आने वाले अवरोध व नाजायज कब्जे हटाएँ। जलस्रोतों के रखरखाव में अपनी व दूसरे लोगों की भागीदारी सुनिश्चित किए जाने की आवश्यकता है। अब तक जो भूलें हमने की है उनका समाधान भी हमें मिलजुल कर ही करना है। हम एक–एक मिलकर अनेक बन सकते हैं। जब इतने हाथ श्रमदान करेंगे तो जलस्रोत अवश्य साफ रहेंगे। उन्हें गंदा करने से भी बचाएँगे। इस कथन पर काम करना है साथी हाथ बटाना, एक अकेला थक जाएगा तो मिलकर बोझ उठाना।

स्थानीय निकायों का दायित्व

गाँवों में पंचायतें, शहरों में नगरपालिका एवं नगरों में नगर एवं महानगर निगम बने हुए हैं। उनको स्थानीय सरकार का अपना दायित्व समझना चाहिए। सभी लोगों को जल शुद्ध एवं ये संस्थाएँ लोगों की भागीदारी से जल भण्डारण के लिये उपयुक्त व्यवस्था जैसे– कुएँ, तालाब, एनीकट, बाँध का निर्माण कराएँ एवं उनके रख–रखाव का ध्यान रखे। नदियों में गंदे नालों का पानी न जाने दें उन्हें शुद्ध रखने के सभी उपचार करें। उन्हें गंदा होने से बचाएँ, व्यर्थ में पानी खराब होने एवं अपव्यय करने के कारकों को दूर करें। पेड़ लगाने और उनकी सुरक्षा करने से हरियाली बढ़ेगी जिससे भूमि में पानी को रोकने में मदद मिलेगी। जल प्रकृति की देन है हमें इसका संग्रहण भी करना है, संयोजन भी करना है। इस पर हर व्यक्ति का बराबर का अधिकार है। चाहे वह किसी जाति, धर्म, सम्प्रदाय, क्षेत्र या पार्टी का हो।

जल शक्ति अभियान

पानी की किल्लत वाले इलाके, खास तौर पर चिन्हित किए गए समस्याग्रस्त ब्लॉकों और पानी की गुणवत्ता की समस्या वाले इलाकों में भूतलीय जल आधारित बहु–ग्राम योजनाओं की पहचान की जानी चाहिए। जहाँ भूमिगत जल की कमी वाले क्षेत्रों में एक गाँव पर आधारित भूमिगत जल योजनाएँ चलाई जानी चाहिए, जिनमें एक छोर से दूसरे छोर तक स्रोत को चिरस्थाई बनाने के उपायों को बढ़ावा दिया गया हो। इन योजनाओं में वर्षा जल के पारिवारिक या सामुदायिक संचयन का भी प्रावधान किया जाना चाहिए और इस संचित जल का उपयोग भूमिगत जलाशयों को फिर से भरने में किया जा सकता है। जल संचय और संरक्षण की अन्य स्थानीय विधियों को भी बढ़ावा दिया जाना चाहिए। जल संचय के लिए बुनियादी ढाँचे के विकास के स्थानीय तौर–तरीकों का एक उदाहरण मध्यप्रदेश के देवास जिले में देखा जा सकता है। यहाँ कृषक समुदाय को पानी के वैकल्पिक स्रोत और आपूर्ति स्रोत के रूप में तालाबों के बुनियादी ढाँचे के विकास के कार्य में सरकारी सहायता का उपयोग किया गया। इससे जिले में तालाबों के जल स्तर में 4 से 40 फुट की बढोत्तरी हुई। इतना ही नहीं इससे जिले का सिचिंत क्षेत्र भी 120–190 प्रतिशत बढ़ गया। जल शक्ति मंत्रालय ने इसी सिलसिले में जल शक्ति अभियान शुरू किया है। यह देश के 256 जिलों के 1592 चुने हुए ब्लॉकों में जल संरक्षण गतिविधियों में हो रही प्रगति को तेज करने का केन्द्र और राज्य सरकारों का सहयोगपूर्ण प्रयास है। इस अभियान के तहत केन्द्र सरकार के 1000 से अधिक वरिष्ठ अधिकारी राज्यों के अधिकारियों के साथ मिलकर जल संचय और जल संरक्षण के प्रयास करेंगे।

हर घर जल

इसके बाद प्रत्येक पेयजल योजनाओं के अन्तर्गत जल संरक्षण पर ध्यान केन्द्रित करने का एक अन्य क्षेत्र है और वह है–घरों से निकलने वाले पानी (जलमल से इतर) जैसे रसोईघर या स्नानागार से निकलने वाले पानी (जिसे ग्रे वाटर, यानी अवजल कहा जाता है) के संचय और उसकी सफाई के लिए बुनियादी ढाँचे का विकास। इस तरह का पानी घरों में इस्तेमाल के बाद निकलने वाले कुल गन्दे पानी के करीब 80 प्रतिशत के बराबर होता है। इसका संचय साधारण तालाबों, कृत्रिम रूप से बनाई गई आर्द्र भूमियों और इसी तरह की स्थानीय अवसंरचना परियोजनाओं में किया जा सकता है। इसमें जमा पानी का पुनर्चक्रण कर उसे खेतों में सिंचाई के काम में लाया जा सकता है। इस तरह के कार्यों में हमारे द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले पानी का 80 प्रतिशत पानी खर्च होता है।

गुजरात जैसे कुछ राज्य माइक्रो इरिगेशन (सूक्ष्म सिंचाई) की सुविधा छह लाख से अधिक किसानों को उपलब्ध कराकर पानी के कुशल उपयोग के क्षेत्र में अग्रणी हैं। इन किसानों में से 50 प्रतिशत छोटे और मझोले किसान हैं। आन्ध्र प्रदेश सरकार भी खेती में पानी के दक्षतापूर्ण उपयोग के कार्य को प्राथमिकता प्रदान कर रही है और उसने अगले पाँच वर्षों में 40 लाख एकड़ जमीन को माइक्रो इरिगेशन के अन्तर्गत लाने के लिए 11,000 करोड़ रुपए का आवंटन किया है। अगर इन उपायों के साथ–साथ अगर कृषि कार्यों में अवजल के उपयोग के प्रयासों को भी जोड़ दिया जाए तो हमारे जल संसाधनों पर कृषि के लिए पानी उपलब्ध कराने का दबाव काफी कम हो जाएगा।

वांछित जन आन्दोलन

पानी के बारे में जागरूकता बढ़ाना और सोच में बदलाव को भी महत्त्वपूर्ण प्राथमिकता बनाना जरूरी है। आज भी पानी को असीमित यानी कभी न खत्म होने वाला संसाधन माना जाता है और देश के कई भागों में इसकी जमकर बर्बादी की जाती है, जबकि दूसरे राज्यों को सूखे जैसी स्थितियों का सामना करना पड़ता है। पानी को लेकर अंदरूनी और बाहरी सहभागियों के व्यवहार में बदलाव के लिए की जा रही संचार सम्बन्धी पहल को सफल बनाना बहुत जरूरी है। हमें राज्य सरकारों से लेकर आम नागरिक जैसे सभी सहभागियों को साथ लेकर चलना होगा और राष्ट्रीय आम सहमति तैयार करनी होगी। इसके लिए स्वच्छ भारत मिशन की व्यवहार परिवर्तन सम्बन्धी संचार पहलों को समन्वित जल प्रबन्धन उपायों के क्षेत्र में अपनाना होगा और सबसे निचले स्तर पर पानी के संरक्षण के बारे में लोगों को प्रेरित करने के लिए जल संरक्षण सेनानियों की एक फौज खड़ी करनी होगी, जो स्वच्छ भारत मिशन के स्वच्छाग्रहियों के तर्ज पर होगी। इस तरह के पैदल सेनानियों यानी सबसे निचले स्तर के कार्यकर्ताओं, सरपंचों और ब्लॉक व जिला अधिकारियों की क्षमता बढ़ाने के प्रयास किए जा हैं।

❑❑❑

कृषि में कृत्रिम बुद्धिमता (एआई) – एक नया आयाम

नेहाँजली परमार, कुँवर हरेन्द्र सिंह, अजय कुमार
भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

संज्ञानात्मक कम्प्यूटिंग कृषि सेवाओं में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण तकनीक के रूप में माना जा रहा है क्योंकि यह कृषि की उत्पादकता बढ़ाने के लिये विभिन्न सीखने वाली प्रणाली को समझने, सीखने और यथोचित प्रतिक्रिया देने में सक्षम है। कृषि बुद्विमता क्लाउड मशीन लर्निगं, सैटेलाइट इमेजरी और उन्न्त ऐनालिटिक्स जैसी नई तकनीक का उदय स्मार्ट खेती के लिये एक पारिस्थितिकी तंत्र बना रहा है। इन सभी आधुनिक तकनीकों का मिश्रण किसानों को उच्च औसत उपज एवं बेहतर मूल्य नियंत्रण हासिल करने में सक्षम बनाता है। सटीक खेती करने के लिये एआई सटीक और नियंत्रित तकनीकों का उपयोग करके यह मार्गदर्शन प्रदान करती है कि खेत में कितना पानी, पोषक तत्व देना चाहिए, बुवाई का सही समय क्या रहेगा और क्या फसल चक्र अपनाना चाहिए। कृषि में एआई के उपयोग के बारे में किसानों को जानकारी एवं प्रशिक्षण देना होगा और उन्हें यह तकनीक सस्ती दरों पर उपलब्ध करवानी होगी।

कृषि भारत में एक प्रमुख उद्योग के रूप में माना जाता है और यह हमारी अर्थव्यवस्था की नींव का एक बड़ा हिस्सा है। कृषि उत्पादों और मशीनीकरण में कृषि बुद्विमता के उपयोग को आधुनिक कृषि में तेजी से अपनाया जा रहा है। संज्ञानात्मक कम्प्यूटिंग कृषि सेवाओं में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण तकनीक के रूप में माना जा रहा हैक्योंकि यह कृषि की उत्पादकता बढ़ाने के लिये विभिन्न सीखने वाली प्रणाली को समझने, सीखने और यथोचित प्रतिक्रिया देने में सक्षम है। सभी किसानों को संवादात्मक मंच की सेवा के रूप में कृषि बुद्विमता की तकनीकों से तकनीकी प्रगति के साथ तालमेल रखने की मदद मिलेगी। वर्तमान में माइक्रोसॉफटकंपनी, आंध्र प्रदेश में 175 किसानों को बुवाई, भूमि उर्वरकों आदि के बारे में सलाहकार सेवायें प्रदान कर रही है। इसके परिणामस्वरूप किसानों को पिछले वर्ष की तुलना में औसतन 30 प्रतिशत प्रति हैक्टेयर अधिक उपज हुई है। कॉपइन, बैगंलुरू में एक एआई स्टार्टअप है जो कि एक सहज, बुद्विमान और आत्मविकसित प्रणाली है और यह कृषि के लिये भविष्य में होने वाली कृषि समाधानों को वितरित करता है। आनिवार्य रूप से कॉप इन एआई तकनीकों का उपयोग किसानों को खड़ी फसल में विभिन्न शस्य क्रियायें करने की जानकारी देता है। इसके अलावा यह किसानों को कृषि लोन चुकाने के बारे में भी सलाहकार सेवायें देता है। आज आंध्र प्रदेश और कर्नाटक राज्यों के किसान बीज की बुबाई करने से पहले अपने फोन पर कृषि संदेश प्राप्त करने की प्रतीक्षा करते हैं। तेलंगाना, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश के कुछ दर्जन गावों में किसानों को वॉइस कॉल प्राप्त होती है जो उन्हें बताती है कि मौसम की स्थिति क्या है, उनकी फसल में किस अवस्था में किस कीड़े का हमला हो सकता है।

संज्ञानात्कम कंप्यूटिंग एक ऐसी तकनीक है जो कि एक मॉडल के रूप में मानव विचार प्रक्रिया की नकल करता है। यह एआई संचालित कृषि में दक्षता बढाने के लिए विभिन्न परिस्थितियों के आधार पर व्यवस्था करने और प्रतिक्रिया करने में अपनी सेवा प्रदान करता है। खेती में हो रहे आधुनिकीकरण से लाभांन्वित होने के लिये किसानों को चैटरवोट जैसे प्लेटफार्मों के माध्यम से समाधान प्रदान करवाये जा सकते हैं। इस लेख में उन संज्ञानात्कम समाधानोंके बारे में जानकारी दी गई हैजिनके उपयोग से किसानों को कृषि में लाभ मिल सकता है।

खेत प्रबंधन –हवा में उड़ने वाले माध्यमों जैसे ड्रोन या कॉपर्स की मदद से खेतों (बड़े क्षेत्रफल) के मानचित्र प्राप्त हो जाते हैं जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि खेत के किस हिस्से की फसल को पानी,कीटनाशीया उर्वरक की आवश्यकता है। उसी जगह पर रासायनिक छिड़काव करके या सिंचाई करके कम संसाधनों से अच्छी खेती की पैदावार कम लागत में की जा सकती है।

फसल तत्परता पहचान –सफेद या यू. वी. –ए प्रकाश के द्वारा फसलों की छवि या चित्रों से यह निर्धारण करने में मदद मिलती है कि फसल कितनी पक गई है या कब पकने वाली है। किसान उसी के अनुसार फसल पकाव की तत्परता श्रेणी बना कर उसका कटाव कर सकते हैं। फसलों को बाजार में विक्रय के लिये भेजने की भी यह श्रेणियाँ मदद करती हैं।

कृषि फसल रोग की पहचान –ड्रोन या कॉपर से उलब्ध फसल कीछवियों से पता लगाया जाता है कि खेत के किस भाग की फसल रोगग्रस्त है या नहीं। रोगग्रस्त भाग को तब काट लिया जाता है और आगे के निदान के लिए दूरस्थ प्रायोगशाला में भेजा जाता है। इस विधि से विभिन्न प्रकार के कीटों एवं फसल में पोषक तत्वों की कमी का पता लगाकर उस भाग में रसायनों का उपयोग कर उचित निवारण किया

जाता है।

कृषि उत्पाद के लिये दृष्टतम मिश्रण की पहचान –मृदा की स्थिति, मौसम पूर्वानुमान, बीजों के प्रकार, एक निशिचित क्षेत्र में संक्रमण आदि जैसे कई मापदंडों के आधार पर संज्ञानात्कम समाधान किसानों को फसलों और संकर बीजों के सर्वोत्तम विकल्प पर अनुशंसा प्रदान करते हैं। यह सिफारिश खेत की आवश्यकता, स्थानीय परिस्थितियों और पूर्व में फसल खेती के बारे में आंकड़ों पर आधारित होती है। बाजार के रूझान, कीमतों या फिर उपभोक्ताओं की जरूरतों जैसे अन्य कारकों का भी ध्यान रखा जाता है जिससे किसान अच्छी तरह से सूचित निर्णय ले सकते हैं।

फसलों की निगरानी – हजारों एकड़ कृषि के क्षेत्रफल में फसल मैट्रिक्स बनाने के लिए हाईपर स्पैक्ट्रल इमेजिंग और 3–डी लेजर स्कैनिग के साथ रिमोट सैंसिंग तकनीक का इस्तेमाल किया जाता है। कृषि बुद्विमता में समय और कम प्रयत्नों के परिपेक्ष्य दोनों तरह से किसानों द्वारा खेती की निगरानी कैसे की जाती है, इस संदर्भ में एक क्रांतिकारी बदलाव लाने की क्षमता है। इस तकनीक का उपयोग फसलों की निगरानी के साथ–साथ उनके पूरे जीवन चक्र में आने वाली विसंगतियों के बारे में रिपोर्ट बनाने में भी किया जाता है।

सिंचाई और किसानों को सक्षम बनाने में स्वचालन तकनीक – खेती में मानव गहन प्रक्रियाओं में सिंचाई एक ऐसी प्रकिया है जिससे ज्यादा श्रम लगता है। ऐतिहासिक मौसम के तौर तरीकों, मृदा की गुणवत्ता और उगाई जाने वाली फसलों पर प्रशिक्षित मशीनें सिंचाई को बड़े स्तर पर स्वचालित कर सकती हैं और समग्र उपज में वृद्वि कर सकती हैं। विश्व के लगभग 70 प्रतिशत ताजे पानी का सिंचाई में उपयोग होने के कारण, स्वचालन तकनीक किसानों को अपनी पानी की समस्याओं को प्रवंधनकरने में मदद करती है।

उपज प्रवंधन में कृषि बुद्विमता का उपयोग – कृषि बुद्विमता क्लाउड मशीन लर्निगं, सैटेलाइट इमेजरी और उन्न्त ऐनालिटिक्स जैसी नई तकनीक का उदय स्मार्ट खेती के लिये एक पारिस्थितिकी तंत्र बना रहा है। इन सभी आधुनिक तकनीकों का मिश्रण किसानों को उच्च औसत उपज एवं बेहतर मूल्य नियंत्रण हासिल करने में सक्षम बनाता है। माईक्रोसॉफट कंम्पनी वर्तमानमें आंध्र प्रदेश के किसानों को कृषि बुद्विमताकी तकनीकों का खेती में प्रयोग करने के लिये सलाहकार सेवायें प्रदान कर रहा है। इस पायलट परियोजना में बुबाई की तिथि, भूमि की तैयारी, मृदा परीक्षण आधारित निषेचन प्राकृतिक खाद का उपयोग, बीजउपचार, इष्टतम बुबाई की गहराई के बारे में किसानों को सूचना देनेके लिए एआई बुबाई ऐप का प्रयोग किया जा तंत्र बना रहा है जिसकी वजह से प्रति हैक्टेयर औसत उपज में 30 प्रतिशत की वृद्वि हुई है। इसके अलावा इस प्रौद्योगिकी का उपयोग किसानों को आदर्श बुबाई के समय के बारे में दैनिक वर्षा, मृदा में नमी की मात्रा आदि के बारे में सूचना प्रदान करने के लिये भी किया जाता है।

संभावित कीटों के हमले की पहचान करने के लिये यूनाईटेड फोस्फोरस लिमिटेड के साथ मिलकर माईक्रोसॉफट कंपनी एक कीट जोखिम अनुमान ऐप का निर्माण कर रही है जो कीट हमले के बारे में पहले से ही सूचना प्रदान कर दिया करेगा। मौसम की स्थिति और फसल अवस्था के आधार पर कीटों के हमलों की भविष्यवाणी उच्च, मध्यम या निम्न के रूप मेंकी जाती है।

सटीक खेती – सटीक खेती करने के लिये एआई सटीक और नियंत्रित तकनीकों का उपयोग करके यह मार्गदर्शन प्रदान करती है कि खेत में कितना पानी, पोषक तत्व देना चाहिए, बुवाई का सही समय क्या रहेगा और क्या फसल चक्र अपनाना चाहिए। यह प्रक्रियाये खेती को और कुशल बनाती हैं।

रोबोटिक्स – एआई कंपनियाँस्वायत रोबोट विकसित करने के प्रयासों पर अपना ध्यान केंद्रित कर रही हैं जो कि आसानी से कृषि कार्यों को कर सकते हैं। ये रोबोट मानव श्रमिकों की तुलना में बहुत तेज गति से और ज्यादा मात्रा में फसलों की कटाई करने में सक्षम होते हैं। रोबोट को कृषि श्रम शक्ति की चुनौतियों का सामना करते हुए फसलों को इकट्ठा करना और पैक करने के लिये डिजाइन किया जाता है। इसके अतिरिक्त कृषि रोबोट हानिकारक खरपतवारों को फसलों के बीच से निकालने की क्षमता भी रखते हैं जिससे फसल को खरपतवारों और खरपतवारनाशी रसायनों से छुटकारा मिल जाता है।

कृषि उत्पाद ग्रेडिंग – विभिन्न कृषि फसल उत्पादों जैसे फल, अनाज, सब्जियाँ, कपास आदि के रंग और आकार की विशेषताओं के आधार पर उनके छवि चित्रों को एआई तकनीक द्वारा स्वचालित गुणवत्ता विश्लेषण से ग्रेडिंग किया जाता है। किसान अपने मोबाइल फोन पर चित्र लेकर एआई विधि से पता लगा सकता है कि फसल कब काटनी है और उसका उत्पाद ग्रेडिंग की किस श्रेणी का है एवं उसका बाजार

में क्या मूल्य मिलेगा।

ए आई में ड्रोन की उपयोगिता

खेती में उपयोग होने वाली एआई तकनीकों में शामिल ड्रोन एक सशक्त उपकरण साबित हुआ है। गहराई से क्षेत्र विश्लेषण, लम्बी दूरी से फसल छिड़काव और उच्च दक्षता से फसल की निगरानी करके फसलों की पैदावार को बढ़ानें में ड्रोन किसानों के लिए एआई का अमूल्य उपहार बन रहा है। ड्रोन तकनीक के लिये व्यावहारिक अनुप्रयोग लगातार बढ़ रहे हैं और आने वाले समय में ड्रोन–संचालित कृषि एक बड़े पैमाने पर अपनायी जायेगी।

चालक रहित ट्रेक्टर

विभिन्न उद्योग काफी समय से चालक रहित या स्वचालित ट्रेक्टर बनाने के शोध में लगे हैं। सेंसर, रेडार और जीपीएस से संचालित परिष्कृत सॉफटवेयर का उपयोग करते हुए रोबोट ही इन ट्रेक्टरों को चलाया करेंगे और खेती की शस्य क्रियायें किया करेगें। ऐसी तकनीक से स्वायतशाई कटाई की जाएगी जिससे किसानों पर काम का दबाब कम पड़ेगा और वे लम्बे समय तक खेती करते रहेंगे क्योंकि फिर उन्हें मानव श्रमिकों की कम आवश्यकता पड़ेगी।

कृषि में कृषि बुद्विमता तकनीकों को अपनाने में चुनौतियाँ –

यद्यपि कृषि बुद्विमता कृषि अनुपयोग में अपार अवसर प्रदान करती है, लेकिन फिर भी पूरे विश्व में खेतों में उन्नत उच्च तकनीक मशीन से समाधान के साथ परिचितता में कमी है। वर्तमान में खेती में फसलें को मौसम की अनुकुल या प्रतिकूल परिस्थितियों, मृदा की स्थिति और कीटों व रोगों के हमले का सामना करना पड़ रहा है जिससे फसल की पैदावार में कमी हो रही है। एक सटीक एवं सही पूर्वानुमान लेने के लिये एआई (कृषि बुद्विमता) तकनीक को प्रशिक्षण मशीनें के लिये बहुत अधिक डाटा की आवश्यकता होती है। कृषि भूमि के एक बहुत बड़े क्षेत्र के मामलें में स्थानिक डाटा आसानी से एकत्रित हो जाता है। लेकिन छोटे क्षेत्र के लिए डाटा प्राप्त करना एक बहुत बडी चुनौती है। विभिन्न फसल संबंधी आंकड़े वर्ष में केवल एक बार ही प्राप्त किये जा सकते हैं जिस समय फसल उगाई जाती है। प्रशिक्षण मशीनें बनाने के लिए कई वर्षों के आंकड़ों की जरूरत पड़ती है। इसलिए कृषि बुद्विमता की तकनीकों को उपयोग करने योग्य बनाना काफी समय पूर्ति का काम है।

आने वाले समय में खेती का भविष्य काफी हद तक संज्ञानात्कम समाधानों को अपनाने पर निर्भर करेगा। हालांकि इस विषय में काफी शोध जारी है और कई अनुप्रयोग पहले से ही उपलब्ध हैं, लेकिन किसानों को अभी तक कृषि बुद्विमता तकनीकों का खेती में विशेषकर भारत में कोई विशेष लाभ नही पहुॅचा है। कृषि में एआई के उपयोग के बारे में किसानों को जानकारी एवं प्रशिक्षण देना होगा और उन्हें यह तकनीक सस्ती दरों पर उपलब्ध करवानी होगी। इसके अलावा एआईतकनीकों के खेती में परणिाम भी उत्साहवर्धक होने चाहिए ताकि किसान उन्हें अपना सके। एआई समाधानों को किसानों के लिये खुले स्त्रोत मंच के रूप में प्रदान करना होगा जिससे कि वे उन्हें तेजी से अपनाकर खेती में लाभ कमा सकें। एआई तकनीकें किसानों की नौकरियों या काम को खत्म तो नहीं करेगा, लेकिन निशिचित रूप से उनकी शस्य प्रकियाओं में सुधार करेगा और उन्हें आवश्यक फसलों के उत्पादन, फसल और बिक्री के लिये अधिक कुशल तरीके प्रदान करेगा।

❑❑❑

चलै ट्रैक्टर डीजल लावै, जब खेत में जोत लगावै।
पाटा फेरे नरम बनावै,
खर्चा करै डरै नहीं, मन में लाज रखै भगवान, तेरी जय हो वीर किसान।।

स्थापना दिवस समारोह के आयोजन पर

डॉ. अरविन्द कुमार, कुलपति, रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी,
डॉ. जे.एस. चौहान, निदेशक, भा.कृ.अनुप. – केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मथुरा एवं डॉ. राघवेन्द्र सिंह, निदेशक, भा.कृ.अनुप.–केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर द्वारा वृक्षारोपण एवं वैज्ञानिकों का सम्बोधन

स्थापना दिवस समारोह के आयोजन पर

डॉ. अरविन्द कुमार, कुलपति, रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी,
डॉ. जे.एस. चौहान, निदेशक, भा.कृ.अनुप. – केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मथुरा एवं डॉ. राघवेन्द्र सिंह, निदेशक,
भा.कृ.अनुप.–केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, आविकानगर द्वारा प्रकाशनों का विमोचन एवं पुरस्कार वितरण

निदेशालय में आयोजित बीज पखवाड़ा कार्यक्रम

निदेशालय में स्वच्छ भारत अभियान के तहत आयोजित कार्यक्रमों की झलकियां

निदेशालय में आयोजित हिन्दी पखवाड़ा कार्यक्रम

CELEBRATING

25 Years

1993 - 2018

ICAR-DIRECTORATE OF RAPESEED-MUSTARD RESEARCH

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

निदेशालय राजर्षि टंडन राजभाषा पुरस्कार 2012–13 से सम्मानित